रत्नकरण्ड श्रावकाचार

अनुक्रमणिका

001) मंगलाचरण
001) आचार्य की प्रतिज्ञा
003) धर्म का लक्षण

सम्यग्दर्शन-अधिकार

004) सम्यग्दर्शन
005) आप्त का लक्षण
005) वीतराग का लक्षण
007) हितोपदेशी का लक्षण
007) आगम का लक्षण
009) शास्त्र का लक्षण
009) गुरु का लक्षण
011) नि:शंकित अंग
011) नि:कांक्षित अंग
013) निर्विचिकित्सा अंग
013) अमूढ़दृष्टि अंग
015) उपगूहन अंग
015) स्थितिकरण अंग
017) वात्सल्य अंग
017) प्रभावना अंग
019-020) आठ अंगधारी के नाम
019-020) अंगहीन सम्यक्त्व व्यर्थ है
022) लोक मूढ़ता
022) देव मूढ़ता
024) गुरु मूढ़ता
024) आठमद के नाम
026) मद करने से हानि
026) पाप त्याग का उपदेश
028) सम्यग्दर्शन की महिमा
028) धर्म और अधर्म का फल
030) सम्यग्दृष्टि कुदेवादिक को नमन ना करे
030) सम्यग्दर्शन की श्रेष्ठता
032) सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान चारित्र की असम्भवता
032) मोही मुनि की अपेक्षा निर्मोही गृहस्थ श्रेष्ठ
034) श्रेय और अश्रेय का कथन
034) सम्यग्दृष्टि के अनुत्पत्ति के स्थान
036) सम्यग्दृष्टि जीव श्रेष्ठ मनुष्य होते हैं
036) सम्यग्दृष्टि जीव इंद्र पद पाते हैं
038) सम्यग्दृष्टि ही चक्रवर्ती होते हैं
038) सम्यग्दृष्टि ही तीर्थंकर होते हैं
040) सम्यग्दृष्टि ही मोक्ष-पद प्राप्त करते हैं
040) उपसंहार

सम्यग्ज्ञान-अधिकार

042) सम्यग्ज्ञान का लक्षण
042) प्रथमानुयोग
044) करणानुयोग

044) चरणानुयोग
046) द्रव्यानुयोग

सम्यक-चारित्र-अधिकार

047) चारित्र की आवश्यकता
048) चारित्र कब होता है?
048) चारित्र का लक्षण
050) चारित्र के भेद और उपासक
050) विकल चारित्र के भेद

अणुव्रत-अधिकार

052) अणुव्रत का लक्षण
052) अहिंसा अणुव्रत
054) अहिंसा अणुव्रत के अतिचार
054) सत्याणुव्रत
056) सत्याणुव्रत के अतिचार
056) अचौर्याणुव्रत
058) अचौर्याणुव्रत के अतिचार
058) ब्रह्मचर्य अणुव्रत
060) ब्रह्मचर्याणुव्रत के अतिचार
060) परिग्रह परिमाण अणुव्रत
062) परिग्रह परिमाण अणुव्रत के अतिचार
062) पंचाणु व्रत का फल
064) पंचाणुव्रत में प्रसिद्ध नाम
064) पांच पाप में प्रसिद्ध नाम
066) श्रावक के आठ मूलगुण

गुणव्रत-अधिकार

067) गुणव्रतों के नाम
068) दिग्व्रत का लक्षण
068) मर्यादा की विधि
070) दिग्व्रती के महाव्रतपना
070) सो कैसे ? उसका समाधान
072) महाव्रत का लक्षण
072) दिग्व्रत के अतिचार
074) अनर्थदण्ड व्रत
074) अनर्थदण्ड के भेद
076) पापोपदेश का लक्षण
076) हिंसादान अनर्थदण्ड
078) अपध्यान अनर्थदण्ड
078) दु:श्रुति अनर्थदण्ड
080) प्रमादचर्या अनर्थदण्ड
080) अनर्थदण्डव्रत के अतिचार
082) भोगोपभोग परिमाण गुणव्रत
082) भोग-उपभोग के लक्षण
084) सर्वथा त्याज्य पदार्थ
084) अन्य त्याज्य पदार्थ
086) व्रत का स्वरूप
086) यम और नियम
088-89) भोगोपभोग सामग्री
088-89) भोगोपभोग परिमाण व्रत के अतिचार

शिक्षाव्रत-अधिकार

091) शिक्षाव्रत
091) देशावकाशिक शिक्षाव्रत

093) देशव्रत में मर्यादा की विधि
093) देशव्रत में काल मर्यादा
095) यह व्रत भी उपचार से महाव्रत है
095) देशावकाशिक व्रत के अतिचार
097) सामायिक शिक्षाव्रत
097) समय शब्द की व्युत्पत्ति
099) सामायिक योग्य स्थान
099) व्रत के दिन सामायिक का उपदेश
101) प्रतिदिन सामायिक का उपदेश
101) सामायिक के समय मुनितुल्यता
103) परीषह / उपसर्ग सहन का उपदेश
103) सामायिक के समय चिंतन
105) सामायिक के अतिचार
105) प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत
107) उपवास के दिन वर्जित कार्य
107) उपवास के दिन कर्तव्य
109) प्रोषध और उपवास का लक्षण
109) प्रोषधोपवासव्रत के अतिचार
111) वैयावृत्य का लक्षण
111) वैयावृत्य का दूसरा लक्षण
113) दान का लक्षण
113) दान का फल
115) नवधा भक्ति का फल
115) अल्पदान से महाफल
117) दान के भेद
117) दानों में प्रसिद्ध नाम
119) वैयावृत्य में अर्हंत पूजा
119) पूजा का माहात्म्य
121) वैयावृत्य के अतिचार

सल्लेखना-अधिकार

122) सल्लेखना का लक्षण
123) सल्लेखना की आवश्यकता
123) सल्लेखना की विधि और महाव्रत धारण का उपदेश
126) स्वाध्याय का उपदेश
126) भोजन के त्याग का क्रम
128) सल्लेखना में शेष आहार त्याग का क्रम
128) सल्लेखना के पांच अतिचार
130) सल्लेखना का फल
130) मोक्ष का लक्षण
132) मुक्तजीवों का लक्षण
132) विकार का अभाव
134) मुक्तजीव कहाँ रहते हैं ?
134) सद्धर्म का फल

श्रावकपद-अधिकार

136) ग्यारह प्रतिमा
136) दर्शन प्रतिमा
138) व्रत प्रतिमा
138) सामायिक प्रतिमा
140) प्रोषध प्रतिमा
140) सचित्त त्याग प्रतिमा
142) रात्रि भुक्ति त्याग प्रतिमा
142) ब्रह्मचर्य प्रतिमा

144) आरम्भ त्याग प्रतिमा
144) परिग्रह त्याग प्रतिमा
146) अनुमति त्याग प्रतिमा
146) उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा
148) श्रेष्ठ ज्ञाता कौन है ?
148) रत्नत्रय का फल
150) इष्ट प्रार्थना

!! श्रीसर्वज्ञवीतरागाय नम: !!

श्रीमद्-भगवत्समन्तभद्राचार्य-देव-प्रणीत

श्री

रत्नकरण्ड श्रावकाचार

मूल संस्कृत गाथा,

प्रभाचंद्राचार्य कृत संस्कृत टीका और आदिमती माताजी कृत हिंदी टीका सहित

आभार :

!! नम: श्रीसर्वज्ञवीतरागाय !!

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः

कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नम: ॥1॥

अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलकलंका

मुनिभिरूपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥2॥

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया

चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नम: ॥3॥

॥ श्रीपरमगुरुवे नम:, परम्पराचार्यगुरुवे नम: ॥

सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमन: प्रतिबोधकारकं, पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचार नामधेयं, अस्य मूलाग्रन्थकर्तार: श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तर ग्रन्थकर्तार: श्रीगणधरदेवा: प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचनानुसारमासाद्य आचार्य श्रीसमन्तभद्राचार्यदेव विरचितं

॥ श्रोतार: सावधानतया शृणवन्तु ॥

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी

मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥

सर्वमंगलमांगल्यं सर्वकल्याणकारकं

प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम् ॥

आचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी

अन्वयार्थ : रत्नकरण्ड श्रावकाचार ग्रन्थ के कर्त्ता आचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी हैं । प्रतिभाशाली आचार्यों, समर्थ विद्वानों एवं पूज्य महात्माओं में आपका स्थान बहुत ऊँचा है । आप समन्तातभद्र थे - बाहर भीतर सब ओर से भद्र रूप थे । आप बहुत बडे योगी, त्यागी, तपस्वी एवं तत्त्व ज्ञानी थे । आप जैन धर्म एव सिद्धान्तों के मर्मज्ञ होने के साथ ही साथ तर्क व्याकरण छन्द अलंकार और काव्य-कोषादि ग्रन्थों में पूरी तरह निष्णात थे । आपको स्वामी पद से खास तौर पर विभूषित किया गया है । आप वास्तव में विद्वानों योगियों त्यागी-तपस्वियों के स्वामी थे ।

जीवनकाल : आपने किस समय इस धरा को सुशोभित किया इसका कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है । कोई विद्वान आपको ईसा की तीसरी शताब्दी के बाद का बताते हैं तो कोई ईसा की सातवीं आठवीं शताब्दी का बताते हैं । इस सम्बन्ध में सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ स्वर्गीय पंडित जुगल कशोर जी मुख्तार ने अपने विस्तृत लेखों में अनेकों प्रमाण देकर यह स्पष्ट किया है कि स्वामी समन्तभद्र तत्वार्थ सूत्र के कर्ता आचार्य उमास्वामी के पश्चात् एवं पूज्यपाद स्वामी के पूर्व हुए है । अत: आप असन्दिग्ध रूप से विक्रम की दूसरी-तीसरी शताब्दी के महान विद्वान थे । अभी आपके सम्बन्ध में यही विचार सर्वमान्य माना जा रहा है ।

जन्म स्थान : पितृ कुल गुरुकुल - संसार की मोह ममता से दूर रहने वाले अधिकांश जैनाचार्यों के माता-पिता तथा जन्म स्थान आदि का कुछ भी प्रमाणिक इतिहास उपलब्ध नहीं है । समन्तभद्र स्वामी भी इसके अपवाद नहीं हैं । श्रवणबेलगोला के विद्वान श्री दोर्बलिजिनदास शास्त्री के शास्त्र भंडार में सुरक्षित आप्तमीमांसा की एक प्राचीन ताडपत्रीय प्रति के निम्नांकित पुष्प का वाक्य ''इति श्री

फणिमंडलालंकार स्योरगपुराधिपसूनो: श्री स्वामी समन्तभद्र मुने: कुतौ आप्तमीमांसायाम्'' से स्पष्ट है कि समन्तभद्र फणिमडलान्तर्गत उरगपुर के राजा के पुत्र थे । इसके आधार पर उरगपुर आपकी जन्म भूमि अथवा बाल क्रीडा भूमि होती है । यह उरगपुर ही वर्तमान का ''उरैयूर'' जान पडता है । उरगपुर चोल राजाओं की प्राचीन राजधानी रही है । पुरानी त्रिचनापल्ली भी इसी को कहते हैं । आपके माता-पिता के नाम के बारे में कोई पता नहीं चलता है । आपका प्रारंभिक नाम शान्ति वर्मा था । दीक्षा के पहिले आपकी शिक्षा या तो उरैयूर में ही हुई अथवा कांची या मदुरा में हुई जान पडती है क्योंकि ये तीनो ही स्थान उस समय दक्षिण भारत में विद्या के मुख्य केन्द्र थे । इन सब स्थानों में उस समय जैनियों के अच्छे-अच्छे मठ भी मौजूद थे । आपकी दीक्षा का स्थान कांची या उसके आसपास कोई गांव होना चाहिये । आप कांची के दिगम्बर साधु थे ''कांच्यां नग्नाटकोअहं" ।

पितृ कुल की तरह समन्तभद्र स्वामी के गुरुकुल का भी कोई स्पष्ट लेख नहीं मिलता है । और न ही आपके दीक्षा के नाम का ही पता चल पाया है । आप मूलसंघ के प्रधान आचार्य थे । श्रवणबेलगोल के कुछ शिलालेखों से इतना पता चलता है कि आप श्री भद्रबाहु श्रुतकेवली, उनके शिष्य चन्द्रगुप्त मुनि के वंशज पद्मनन्दि अपर नाम कोन्ड कुन्द मुनिराज उनके वशंज उमास्वाति की वंश परम्परा में हुये थे (शिलालेख नम्बर ४०)

मुनि जीवन और आपत् काल : बड़े ही उत्साह के साथ मुनि धर्म का पालन करते हुए जब 'मुउवकहल्ली' ग्राम में धर्म ध्यान सहित मुनि जीवन व्यतीत कर रहे थे और अनेक दुर्द्धर तपश्चरण द्वारा आत्मोन्नति के पथ पर बढ़ रहे थे उस समय असाता वेदनीय कर्म के प्रबल उदय से आपको 'भस्मक’ नाम का महारोग हो गया था । मुनि चर्या में इस रोग का शमन होना असंभव जान कर आप अपने गुरु के पास पहुंचे और उनसे रोग का हाल कहा तथा सल्लेखना धारण करने की आज्ञा चाही । गुरु महाराज ने सब परिस्थिति जानकर उन्हें कहा कि सल्लेखना का समय नहीं आया है और आप द्वारा वीर शासन कार्य के उद्धार की आशा है । अत: जहाँ पर जिस भेष में रहकर रोगशमन के योग्य तृप्ति भोजन प्राप्त हो वहाँ जाकर उसी वेष को धारण कर लो । रोग उपशान्त होने पर फिर से जैन दीक्षा धारण करके सब कार्यों को संभाल लेना । गुरु की आज्ञा लेकर आपने दिगम्बर वेष का त्याग किया । आप वहाँ से चलकर कांची पहुँचे और वहाँ के राजा के पास जाकर शिवभोग की विशाल अन्न राशि को शिवपिण्डी को खिला सकने की बात कही । पाषाण निर्मित शिवजी की पिण्डी साक्षात् भोग ग्रहण करे इससे बढ़कर राजा को और क्या चाहिये था । वहां के मन्दिर के व्यवस्थापक ने आपको मन्दिर जी में रहने की स्वीकृति दे दी । मन्दिर के किवाड बन्द करके वे स्वयं विशाल अन्नराशि को खाने लगे और लोगों को बता देते थे कि शिवजी ने भोग ग्रहण कर लिया । शिव भोग से उनकी व्याधि धीरे-धीरे ठकि होने लगी और भोजन बचने लगा । अन्त में गुप्तचरों से पता लगा कि ये शिव भक्त नहीं है । इससे राजा बहुत क्रोधित हुआ और इन्हें यर्थाथता बताने को कहा । उस समय समन्तभद्र ने निम्न श्लोक में अपना परिचय दिया ।

कांच्यां नग्नाटकोअहं मलमलिनतनुर्लाबुशे पाण्डुपिण्ड
पुण्ड्रोण्डे शाक्य भिक्षु: दशपुरनगरे मिष्टभोजी परिव्राट ।
वाराणस्यामभूवं भुवं शशधरधवल: पाण्डुरांगस्तपस्वी
राजन् यस्याअस्ति शक्ति:स वदतु-पुरतो जैननिर्ग्रन्थवादी ॥

कांची में मलिन वेषधारी दिगम्बर रहा, लाम्बुस नगर में भस्म रमाकर शरीर को श्वेत किया, पुण्डोण्ड में जाकर बौद्ध भिक्षु बना, दशपुर नगर में मिष्ट भोजन करने वाला सन्यासी बना, वाराणसी मे श्वेत वस्त्रधारी तपस्वी बना । राजन् आपके सामने दिगम्बर जैनवादी खड़ा है, जिसकी शक्ति हो मुझ से शास्त्रार्थ कर ले ।

राजा ने शिव मूर्ति को नमस्कार करने का आग्रह किया । समन्तभद्र कवि थे । उन्होने चौबीस तीर्थकरों का स्तवन शुरू किया । जब वे आठवें तीर्थकर चन्दप्रभु का स्तवन कर रहे थे, तब चन्द्रप्रभु भगवान की मूर्ति प्रकट हो गई । स्तवन पूर्ण हुआ । यह स्तवन स्वयंभूस्तोत्र के नाम से प्रसिद्ध है । यह कथा ब्रह्म नेमिदत्त कथा कोष के आधार पर है ।

जिनशासन के अलौकिक दैदीप्यमान सूर्य : देश में जिस समय बौद्धादिकों का प्रबल आतंक छाया हुआ था और लोग उनके नैरात्मवाद, शून्यवाद, क्षणिकवादादि सिद्धान्तों से संत्रस्त थे, उस समय दक्षिण भारत में आपने उदय होकर जो अनेकान्त एवं स्याद्वाद का डंका बजाया वह बड़े ही महत्व का है एवं चिरस्मरणीय है । आपको जिनशासन का प्रणेता तक लिखा गया है । आपके परिचय के सम्बन्ध में निम्न पद्य है ।

आचार्योअहं कविरहमहं वादिराट पण्डितोअहं
दैवज्ञोअहं भिषगहमहं मान्त्रिकस्तान्त्रिककोअहम ।
राजन्नस्यां जलधिवलया मे खलायामिलाया
माज्ञासिद्ध: किमिति बहुना सिद्धसारस्वतोअहम् ॥

मैं आचार्य हूँ, कवि हूँ, शास्त्रार्थियों में श्रेष्ट हूँ, पण्डित हूँ, ज्योतिष हूँ, वैद्य हूँ, कवि हूँ, मान्त्रिक हूँ, तान्त्रिक हूँ, हे राजन् इस सम्पूर्ण पृथ्वी में मैं आज्ञासिद्ध हूँ । अधिक क्या कहूँ, सिद्ध सारस्वत हूँ ।

शुभचन्द्राचार्य ने आपको 'भारत भूषण ' लिखा है आप बहुत ही उत्तमोत्तम गुणों के स्वामी थे फिर भी कवित्व गमकत्व वादित्व और वाग्मित्व नामक चार गुण आप में असाधारण कोटि की योग्यता वाले थे जैसा कि आज से ग्यारह सौ वर्ष पहिले के विद्वान भगवज्जिनसेनाचार्य ने निम्न वाक्य से आदिपुराण में स्मरण किया है ।

कवीनां गमकानां च वादिनां वाग्मिनामपि ।
यश: सामन्त भद्रीयं मूर्घ्निं चूडामणीयते ॥४४॥

यशोधर चरित्र के कर्त्ता महाकवि वादिराज सूरि ने आपको उत्कृष्ट काव्य माणिक्यों का रोहण (पर्वत) सूचित किया है । अलंकर चिन्ता मणि में अजित सेनाचार्य ने आपको कवि कुंजर मुनि वद्य और निजानन्द' लिखा है । वरांग चरित्र में श्री वर्धमान सूरि ने आपको ’महाकवीश्वर' और 'सुतर्क शास्त्रामृत सागर' बताया है । ब्रह्म अजित ने हनुमच्चरित्र में आपको भव्यरूप कुमुदों को प्रकुल्लित करने वाला चन्द्रमा लिखा है तथा साथ में यह भी प्रकट किया है कि वे 'दुर्वादियों' की वादरूपी खाज (खुजली) को मिटाने के लिये अद्वितीय महौषधि थे । इसके अलावा भी श्रवणबेलगोल के शिलालेखों में आपकों 'वादीभव ज्रांकुश सुक्तिजाल स्फुटरत्नदीप' वादिसिंह, अनेकान्त जयपताका आदि आदि अनेकों विशेषणों से स्मरण किया गया है ।

आपका वाद क्षेत्र संकुचित नही था । आपने उसी देश में अपने वाद की विजय दुंदुभि नहीं बजाई जिसमें वे उत्पन्न हुये थे बल्कि सारे भारत वर्ष को अपने वाद का लीला स्थल बनाया था । करहाटक नगर में पहुंचने पर वहां के राजा के द्वारा पूँछे जाने पर आपने अपना पिछला
परिचय इस प्रकार दिया है ।

पूर्व पाटिलपुत्र मध्यनगरे भेरि मयाताडिता
पश्चान्मालवसिन्धु टुक्क विषये कांऽचीपुरे वैदिशे ।
प्राप्तोऽहं करहाटकं बहु भटं विद्योत्कटं संकटं
वादार्थी विचराम्यहं नरपते शार्दूलविक्रीडितम ॥

हे राजन् सबसे पहिले मैंने पाटलीपुत्र नगर में शास्त्रार्थ के लिये भेरी बजवाई फिर मालव, सिन्धु, ढक्क, कांची आदि स्थानों पर जाकर भेरी ताडित की । अब बडे-बड़े दिग्गज विद्वानों से परिपूर्ण इस करहाटक नगर में आया हूँ । मैं तो शास्त्रार्थ की इच्छा रखता हुआ सिंह के समान घूमता फिरता हूँ । 'हिस्ट्री ऑफ कन्नडीज लिटरेचर' के लेखक मिस्टर एडवर्ड पी. राइस ने समन्तभद्र को तेजपूर्ण प्रभावशाली वादी लिखा है और बताया है कि वे सारे भारत वर्ष में जैनधर्म का प्रचार करने वाले महान प्रचारक थे । उन्होंने वाद भेरी बजने का दस्तूर का पूरा लाभ उठाया और वे बड़ी शक्ति के साथ जैन धर्म के स्याद्वाद सिद्धान्त को पुष्ट करने में समर्थ हुये हैं । उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि आपने अनेकों स्थानों पर वाद भेरी बजबाई थी और किसी ने उसका विरोध नही किया । इस सम्बन्ध में स्वर्गीय पंडित श्री जुगलकिशोर जी मुख्तार लिखते हैं कि 'इस सारी सफलता का कारण उनके अन्तःकरण की शुद्धता, चारित्र की निर्मलता एवं अनेकान्तात्मक वाणी का ही महत्व था उनके वचन स्याद्वाद न्याय की तुला में तुले होते थे और इसीलिए उन पर पक्षपात का भूत सवार नहीं होता था । वे परीक्षा प्रधानी थे ।

बहुमूल्य रचनाएँ -

स्वामी समन्तभद्र द्वारा विरचित निम्नलिखित गन्थ उपलब्ध हैं -

१. स्तुति विद्या (जिनशतक)

२. युक्त्यनुशासन

३. स्वयंभूस्तोत्र

४. देवागम (आप्तमीमांसा) स्तोत्र

५. रत्नकरण्ड श्रावकाचार

अर्हदगुणों की प्रतिपादक सुन्दर-सुन्दर स्तुतियाँ रचने की उनकी बड़ी रुचि थी । उन्होंने अपने ग्रन्थ स्तुति विद्या में ''सुस्तुत्यां व्यसनं'' वाक्य द्वारा अपने आपको स्तुतियां रचने का व्यसन बतलाया है । स्वयंभूस्तोत्र, देवागम और युक्त्यनुशासन आपके प्रमुख स्तुति ग्रंथ हैं । इन स्तुतियों में उन्होंने जैनागम का सार एवं तत्त्व ज्ञान को कूट-कूट कर भर दिया है । देवागम स्तोत्र में सिर्फ आपने ११४ श्लोक लिखे हैं । इस स्तोत्र पर अकलंकदेव ने अष्टशती नामक आठ सौ श्लोक प्रमाण वृत्ति लिखी जो बहुत ही गूढ़ सूत्रों में है । इस वृत्ति को साथ लेकर श्री विद्यानन्दाचार्य ने 'अष्ट सहस्री' टीका लिखी जो आठ हजार श्लोक परिमाण है । इससे यह स्पष्ट होता है कि यह ग्रन्थ कितने अधिक **अर्थ** गौरव को लिये हुए है । इसी ग्रंथ में आचार्य ने एकान्तवादियों को स्वपर बैरी बताया है । ''एकान्तग्रह रक्तेषुनाथ स्वपरवैरिषु ॥८॥ इन ग्रन्थों का हिन्दी **अर्थ** सहित प्रकाशन हो चुका है । उपरोक्त ग्रन्थों के अलावा आपके द्वारा रचित निम्न ग्रन्थों के उल्लेख मिलते हैं जो उपलब्ध नहीं हो पाये हैं -

१. जीवसिद्धि २. तत्वानुशासन ३. प्राकृत व्याकरण ४. प्रमाणपदार्थ ५. कर्मप्राभृत टीका और ६. गन्धहस्ति महाभाष्य ।

महावीर स्वामी के पश्चात् सैकडों ही महात्मा-आचार्य हमारे यहाँ हुये है उनमें से किसी भी आचार्य एवं मुनिराजों के विषय में यह उल्लेख नहीं मिलता है कि वे भविष्य में इसी भारत वर्ष में तीर्थंकर होंगे । स्वामी समन्तभद्र के सम्बन्ध में यह उल्लेख अनेक शास्त्रों में मिलता है । इससे इन के चारित्र का गौरव और भी बढ़ जाता है ।

मंगलाचरण

नम: श्री वर्धमानाय निर्धूत कलिलात्मने

सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्या दर्पणायते ॥1॥

अन्वयार्थ : जिन्होंने [निर्धूत कलिलात्मने] सम्पूर्ण कर्म कलंक को धोकर अपनी आत्मा को शुद्ध कर लिया है । [यद्विद्या] जिनके केवलज्ञान रूपी [दर्पणायते] दर्पण में [सालोकानां त्रिलोकानां] तीनों लोक और अलोक स्पष्ट झलकते हैं उन [नम: श्री वर्धमानाय] तीर्थंकर श्री वर्धमान स्वामी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥

आचार्य की प्रतिज्ञा

देशयामि समीचीनं, धर्मं कर्म-निबर्हणम्

संसारदु:खत: सत्वान्, यो धरत्युत्तमे सुखे ॥2॥

अन्वयार्थ : मैं [कर्म-निवर्हणम्] कर्मों का विनाश करने वाले उस [समीचीनं] श्रेष्ठ धर्म को [देशयामि] कहता हूँ [यो] जो [सत्त्वान्] जीवों को [संसारदु:खत:] संसार के दुःखों से निकालकर [उत्तमे सुखे] स्वर्ग-मोक्षादिक के उत्तम सुख में [धरति] धारण करता है - पहुँचा देता है ॥२॥

धर्म का लक्षण

सद्-दृष्टिज्ञानवृत्तानि, धर्मं धर्मेश्वरा विदु:

यदीय-प्रत्यनी-कानि, भवन्ति भवपद्धति: ॥3॥

अन्वयार्थ : [धर्मेश्वरा:] धर्म के स्वामी जिनेन्द्र देव [सद्-दृष्टिज्ञानवृत्तानि] सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र को [धर्मं] धर्म [विदुः] कहते है और [यदीय] उसके [प्रत्यनीकानि] विपरीत (मिथ्याज्ञान, मिथ्यादर्शन, मिथ्याचारित्र) [भवपद्धति] संसार मार्ग [भवन्ति] होते है ।

सम्यग्दर्शन

श्रद्धानं परमार्थाना-माप्तागमतपोभृताम्

त्रिमूढ़ापोढ-मष्टाङ्गं, सम्यग्दर्शन-मस्मयम् ॥4॥

अन्वयार्थ : [परमार्थानाम्] परमार्थभूत [आप्तागमतपोभृताम्] आप्त, आगम और मुनि का [त्रिमूढ़ापोढम्] तीन मूढ़ता रहित [अष्टाङ्गं] आठ अंग से सहित, [अस्मयम्] आठ प्रकार के मदों से रहित [श्रद्धानं] श्रद्धान करना, सम्यग्दर्शन कहलाता है ।

आप्त का लक्षण

आप्तेनोच्छिन्नदोषेण, सर्वज्ञेनागमेशिना

भवितव्यं नियोगेन, नान्यथा ह्याप्तता भवेत् ॥5॥

अन्वयार्थ : जो [दोषेण] दोष [उत्सन्न] रहित होने से वीतराग, [सर्वज्ञेन] सर्व के ज्ञाता होने से सर्वज्ञ और हित के उपदेशक होने से हितोपदेशी हैं, अत: [आगमेन] आगम के [ईशिना] ईश्वर हैं, वे ही [नियोगेन] नियम से [आप्तेन] आप्त [भवितव्यं] होते हैं । [नान्यथा] अन्य प्रकार से / इन गुणों से रहित [ह्याप्तता] आप्त नहीं [भवेत्] हो सकते हैं ॥५॥

वीतराग का लक्षण

क्षुत्पिपासाजरातङ्क-जन्मान्तक-भयस्मयाः

न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते ॥6॥

अन्वयार्थ : [क्षुत्] भूख, [पिपासा] प्यास, [जरा] बुढ़ापा, [आतंक] रोग/व्याधि, जन्म, [अन्तक] मरण, भय, [स्मया:] मद, राग, द्वेष, मोह, रोग, [च] चिंता, निद्रा, आश्चर्य, अरति, पसीना और खेद ये अठारह दोष [यस्या] जिनमें [न] नहीं हैं [स] उसे ही [आप्त:] आप्त [प्रकीर्त्यते] कहते हैं ॥६॥

हितोपदेशी का लक्षण

परमेष्ठी परंज्योति: विरागो विमल: कृती

सर्वज्ञोऽनादिमध्यान्त:, सार्व: शास्तोपलाल्यते ॥7॥

अन्वयार्थ : वह आप्त परमेष्ठी, [परंज्योति:] केवलज्ञानी, [विराग:] वीतराग, विमल, [कृती] कृतकृत्य, सर्वज्ञ, [अनादिमध्यान्त:] आदि, मध्य तथा अन्त से रहित, [सार्व:] सर्वहितकर्ता और [शास्ता] हितोपदेशक [उपलाल्यते] कहा जाता है -- ये सब आप्त के नाम हैं ।

आगम का लक्षण

अनात्मार्थं विना रागै:, शास्ता शास्ति सतो हितम्

ध्वनन् शिल्पिकरस्पर्शा-न्मुरज: किमपेक्षते ॥8॥

अन्वयार्थ : [शास्ता] आप्त भगवान् [विना रागै:] राग के बिना [अनात्मार्थं] अपना प्रयोजन न होने पर भी [सतो] समीचीन-भव्य जीवों को [हितं] हित का उपदेश देते हैं क्योंकि [शिल्पी] बजाने वाले के [कर] हाथ के [स्पर्शान्] स्पर्श से शब्द करता हुआ [मुरज:] मृदंग [किं] क्या [अपेक्षते] अपेक्षा रखता है ? कुछ भी नहीं ॥८॥

शास्त्र का लक्षण

आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यम्-दृष्टेष्ट-विरोधकम्

तत्त्वोपदेश-कृत्सार्वं-शास्त्रं-कापथ-घट्टनम् ॥9॥

अन्वयार्थ : [शास्त्रं] वह शास्त्र सर्वप्रथम [आप्तोपज्ञम] आप्त भगवान् के द्वारा कहा हुआ है, [अनुल्लंघ्यम्] अन्य वादियों के द्वारा जो अखण्डनीय है, [अदृष्टेष्टविरोधकम्] प्रत्यक्ष तथा अनुमानादि के विरोध से रहित है, [तत्त्वोपदेशकृत्] तत्त्वों का उपदेश करने वाला है, [सार्व] सबका हितकारी है और [कापथघट्टनम्] मिथ्यामार्ग का निराकरण करनेवाला है ।

गुरु का लक्षण

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः
ज्ञानध्यानतपोरक्त: तपस्वी स प्रशस्यते ॥10॥
अन्वयार्थ : [विषयाशावशातीत:] जो पंचेंद्रिय के विषयों की आशा से रहित हैं, [निरारम्भ:] सम्पूर्ण आरम्भ और [अपरिग्रहः] परिग्रह से रहित निग्रन्थ दिगम्बर हैं, [ज्ञानध्यानतपोरक्त:] सदा ही ज्ञान, ध्यान और तप में अनुरागी हैं [स:] वे ही [तपस्वी] तपस्वी साधु [प्रशस्यते] प्रशंसनीय / सच्चे गुरू हैं ॥१०॥

नि:शंकित अंग

इदमेवे-दृशमेव, तत्त्वं नान्यन्न चान्यथा
इत्यकम्पायसाम्भोवत्, सन्मार्गेऽसंशया रुचि: ॥11॥
अन्वयार्थ : [तत्तवं] तत्व [इदम्] यह [एव] ही है, [ईदृशम्] ऐसा [एव] ही है, [अन्यत्] अन्य [न] नहीं है और [अन्यथा] अन्य प्रकार भी [न] नहीं है [इति] इस तरह आप्त, आगम, गुरु के विषय में [आयसाम्भोवत्] तलवार की धार पर रखे हुए जल के सदृश [अकम्पा] अचलित [रूचि:] श्रद्धान करना और [सन्मार्गे] मोक्ष—मार्ग में संशय रहित रुचि का होना [असंशया] नि:शंकित अंग है ॥११॥

नि:कांक्षित अंग

कर्मपरवशे सान्ते, दुखैरन्तरितोदये
पापबीजे सुखेऽनास्था, श्रद्धानाकाङ्क्षणा स्मृता ॥12॥
अन्वयार्थ : [कर्मपरवशे] कर्मों के आधीन, [सान्ते] अन्त-सहित / नश्वर, [दु:खै:] दु:खों से [अंतरितोदये] बाधित, [च] और [पापबीजे] पाप के कारण ऐसे [सूखे] सांसारिक-सुखों में [अनास्था] अरुचिपूर्ण [श्रद्धानं] श्रद्धान को [अनाकाङ्क्षणा] नि:कांक्षित अंग [स्मृता] कहते हैं ॥१२॥

निर्विचिकित्सा अंग

स्वभावतोऽशुचौ काये, रत्नत्रयपवित्रिते
निर्जुगुप्सा गुणप्रीति-र्मता निर्विचिकित्सिता ॥13॥
अन्वयार्थ : [स्वभावत:] स्वभाव से [अशुचौ] अपवित्र किन्तु [रत्नत्रय पवित्रिते] रत्नत्रय से पवित्र [काये] शरीर में [निर्जुगुप्सा] ग्लानि रहित [गुणप्रीति:] गुणों से प्रेम करना निर्विचिकित्सा अंग [मता] माना गया है ॥१३॥

अमूढ़दृष्टि अंग

कापथे पथि दु:खानां, कापथस्थेप्यसम्मति:
असम्पृक्ति-रनुत्कीर्ति-रमूढ़ा-दृष्टिरुच्यते ॥14॥
अन्वयार्थ : [दु:खानां] दु:खों के [पथि] मार्ग स्वरूप [कापथे] मिथ्या-दर्शनादि-रूप कुमार्ग में [कापथस्थेऽपि] और कुमार्ग में स्थित जीव में [असम्मति:] मानसिक सम्मति से रहित [अनुत्कीर्ति:] वाचनिक प्रशंसा से रहित और [असम्पृक्ति:] शारीरिक संपर्क से रहित है, वह (सम्यग्दृष्टि का) [अमूढ़ादृष्टि:] अमूढ़दृष्टि अंग [उच्यते] कहा जाता है ॥१४॥

उपगूहन अंग

स्वयं शुद्धस्य मार्गस्य, बालाशक्तजनाश्रयाम्
वाच्यतां यत्प्रमार्जन्ति, तद्वदन्त्युपगूहनम् ॥15॥
अन्वयार्थ : [स्वयं शुद्धस्य] स्वभाव से पवित्र [मार्गस्य] रत्नत्रय रूप मार्ग की [बालाशक्तजनाश्रयाम्] अज्ञानी तथा असमर्थ जनों के आश्रय से होने वाली [वाच्यतां] निन्दा को [यत्] जो [प्रमार्जन्ति] परमार्जित / दूर करते हैं, [तत्] उनके उपगूहन अंग [वदन्ति] कहते हैं ॥१५॥

स्थितिकरण अंग

दर्शनाच्चरणाद्वापि, चलतां धर्मवत्सलै:

प्रत्यवस्थापनं प्राज्ञै:, स्थितिकरणमुच्यते ॥16॥

अन्वयार्थ : [धर्मवत्सलै:] धर्म-स्नेही जनों के द्वारा [दर्शनात्] सम्यग्दर्शन से [वा] अथवा सम्यक् चारित्र से [अपि] भी [चलताम्] विचलित होते हुए पुरुषों का [प्रत्यवस्थापनम्] फिर से पहले की तरह स्थित किया जाना [प्राज्ञै:] विद्वानों के द्वारा [स्थितिकरणम्] स्थितिकरण अंग [उच्चते] कहा जाता है ॥१६॥

वात्सल्य अंग

स्वयूथ्यान्प्रति सद्भाव-सनाथापेतकैतवा

प्रतिपत्ति-र्यथायोग्यं, वात्सल्यमभिलप्यते ॥17॥

अन्वयार्थ : [स्वयूथ्यान्प्रति] सहधर्मीजनों के प्रति जो हमेशा ही [अपेतकैतवा] छल कपट रहित होकर [सद्भाव-सनाथा] सद्भावना रखते हुए प्रीति करना और [यथायोग्यं] यथा योग्य उनके प्रति [प्रतिपत्ति:] विनय भक्ति आदि भी करना [वात्सल्यम्] वात्सल्य अंग [अभिलप्यते] कहा जाता है ॥१७॥

प्रभावना अंग

अज्ञानतिमिरव्याप्ति-मपाकृत्य यथायथम्

जिनशासनमाहात्म्य-प्रकाश: स्यात्प्रभावना ॥18॥

अन्वयार्थ : [अज्ञान] अज्ञानरूपी [तिमिर] अंधकार के [व्याप्तिम्] विस्तार को [अपाकृत्य] दूर कर [यथायथम्] अपनी शक्ति के अनुसार [जिनशासनमाहात्म्य] जिनशासन के माहात्म्य का [प्रकाश:] प्रकाश फैलाना [प्रभावना] प्रभावना-अंग [स्यात्] है ॥१८॥

आठ अंगधारी के नाम

तावदञ्जनचौरोऽङ्गे ततोऽनन्तमतिः स्मृता

उद्दायनस्तृतीयेऽपि तुरीये रेवती मता ॥19॥

ततो जिनेन्द्रभक्तोऽन्यो वारिषेणस्ततः परः

विष्णुश्च वज्रनामा च शेषयोर्लक्ष्यतां गताः ॥20॥

अन्वयार्थ : [तावत्] क्रम से [प्रथमे] प्रथम अङ्ग में [अञ्जनचौर:] अञ्जन चोर, [तत:] तदनन्तर द्वितीय अंग में [अनन्तमती:] अनन्तमती [स्मृता] स्मृत है, [तृतीये] तृतीय अङ्ग में [उद्दायन:] उद्दायन नाम का राजा, [तुरीये] चतुर्थ अङ्ग में रेवती रानी [मता] मानी गई है । तदनन्तर पञ्चम अङ्ग में जिनेन्द्रभक्त सेठ, उसके बाद छठे अङ्ग में वारिषेण राजकुमार, उसके बाद सप्तम और अष्टम अङ्ग में विष्णुकुमार मुनि और वज्रकुमार मुनि [लक्ष्यताम्] प्रसिद्धि को [गाता:] प्राप्त हुए हैं ।

अंगहीन सम्यक्त्व व्यर्थ है

नाङ्गहीनमलं छेत्तुं दर्शनं जन्मसन्ततिम्

न हि मन्त्रोऽक्षरन्यूनो निहन्ति विषवेदनाम् ॥21॥

अन्वयार्थ : [अङ्गहीनम्] अंगों से हीन [दर्शनम्] सम्यग्दर्शन [जन्मसन्नतिम्] संसार की सन्तति को [छेत्तुम्] नष्ट करने के लिए [अलं न] समर्थ नहीं है, [हि] क्योंकि [अक्षरन्यून:] एक अक्षर से भी हीन [मंत्र:] मन्त्र [विषवेदानाम्] विष की पीड़ा को [न निहन्ति] नष्ट नहीं करता ॥२१॥

लोक मूढ़ता

आपगा-सागर-स्नान-मुच्चय: सिकताश्मनाम्

गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते ॥22॥

अन्वयार्थ : [आपगा] नदी, [सागर] सागर में [स्नानम्] स्नान करना, [सिकताश्मनाम्] बालू पत्थर के [उच्चय:] ढेर लगाना, [गिरिपात:] पर्वत से गिरकर मरने से [च] और [अग्निपात:] अग्नि में जलकर मरने में धर्म मानना वह [लोकमूढं] लोक मूढ़ता [निगद्यते] कहा जाता है ॥२२॥

देव मूढ़ता

वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेषमलीमसाः

देवता यदुपासीत देवतामूढमुच्यते ॥23॥

अन्वयार्थ : [वरोपलिप्सया] वरदान प्राप्त करने की इच्छा से [आशावान] आशा से युक्त हो [रागद्वेषमलीमसाः] रागद्वेष से मलिन [देवता:] देवों की [यत्] जो [उपासीत] आराधना की जाती है, [तत्] वह [देवतामूढम्] देवमूढता [उच्यते] कही जाती है ।

गुरु मूढ़ता

सग्रन्थारम्भहिंसानां संसारावर्तवर्तिनाम्

पाषण्डिनां पुरस्कारो ज्ञेयं पाषण्डिमोहनम् ॥24॥

अन्वयार्थ : [सग्रन्थारम्भहिंसानां] परिग्रह, आरम्भ और हिंसा से सहित तथा [संसारावर्तवर्तिनाम्] संसारभ्रमण के कारणभूत कार्यों में लीन [पाषण्डिनां] अन्य कुलिङ्गियों को [पुरस्कारो] अग्रसर करना, [पाषण्डिमोहनम्] पाषण्डिमूढ़ता-गुरुमूढ़ता [ज्ञेयं] जाननी चाहिये ।

आठमद के नाम

ज्ञानं पूजां कुलं जातिं, बलमृद्धिं तपो वपु:

अष्टावाश्रित्य मानित्वं, स्मयमाहुर्गतस्मया: ॥25॥

अन्वयार्थ : अपने [ज्ञानं] ज्ञान, [पूजां] पूजा, [कुलं] कुल, [जातिं] जाति, [बलाम्] बल, [ऋद्धिम्] वैभव, [तप] तप [च] और [वपु:] रूप इन [अष्टौ] आठों का [आश्रित्य] आश्रय लेकर [मानित्वम्] गर्वित होने को [गत्स्मया:] गर्व से रहित गणधर आदिक [स्मयम्] गर्व / मद [आहू:] कहते हैं ॥२५॥

मद करने से हानि

स्मयेन योऽन्यानत्येति धर्मस्थान् गर्विताशयः

सोऽत्येति धर्ममात्मीयं, न धर्मो धार्मिकैर्विना ॥26॥

अन्वयार्थ : [स्मयेन] उपर्युक्त मद से [गर्विताशय:] गर्व-चित्त होता हुआ [य:] जो पुरुष [धर्मस्थान्] रत्नत्रय रूप धर्म में स्थित [अन्यान्] अन्य जीवों को [अत्येति] तिरस्कृत करता है [स:] वह [आत्मीयं] अपने [धर्मम्] धर्म को [अत्येति] तिरस्कृत करता है [यत:] क्योंकि [धार्मिकै: विना] धर्मात्माओं के बिना [धर्म:] धर्म [न] नहीं होता है ॥२६॥

पाप त्याग का उपदेश

यदि पापनिरोधोऽन्यसम्पदा किं प्रयोजनम्

अथ पापास्रवोऽस्त्यन्यसम्पदा किं प्रयोजनम् ॥27॥

अन्वयार्थ : यदि [पापनिरोध:] पाप का आश्रव रुक जाता है तो [अन्यसम्पदा] अन्य सम्पति से [किं] क्या [प्रयोजनम्] प्रयोजन है? और [अथ] यदि [पापास्रवो] पाप का आस्रव होता रहता [अस्ति] है तो [अन्यसम्पदा] अन्य सम्पत्ति से क्या प्रयोजन है ? ॥२७॥

सम्यग्दर्शन की महिमा

सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातङ्गदेहजम्

देवा देवं विदुर्भस्मगूढाङ्गारान्तरौजसम् ॥28॥
अन्वयार्थ : [देव:] जिनेन्द्र-देव [सम्यग्दर्शनसम्पन्नम्] सम्यग्दर्शन से युक्त [मातङ्ग-देहजम्] चांडाल देहधारी मनुष्य को [अपि] भी [भस्मगूढाङ्गारान्तरौजसम्] राख के भीतर ढंके हुए अंगारे के भीतरी प्रकाश के समान [देवम्] पूज्य कहते हैं ॥२८॥

धर्म और अधर्म का फल

श्वापि देवोऽपि देवः श्वा जायते धर्मकिल्विषात्
कापि नाम भवेदन्या सम्पद्धर्माच्छरिरीणाम् ॥29॥
अन्वयार्थ : [धर्मकिल्विषात्] धर्म और पाप से [श्वा] कुत्ता [अपि] भी [देव:] देव [च] और [देव:] देव [अपि] भी [श्वा] कुत्ता [जायते] हो जाता है । [शरीरिणां] जीवों को [धर्मात्] धर्म से [अन्या] अन्य और [अपि] भी [का] अनिर्वचनीय [सम्पत्] सम्पदा [भवेत्] प्राप्त होती है ॥२९॥

सम्यग्दृष्टि कुदेवादिक को नमन ना करे

भयाशास्नेहलोभाच्च कुदेवागमलिङ्गिनाम्
प्रणामं विनयं चैव न कुर्य्युः शुद्धदृष्टयः ॥30॥
अन्वयार्थ : [शुद्धदृष्ट्य:] सम्यग्दृष्टी जीव [भयाशा-स्नेह-लोभाच्च] भय से, आशा से, प्रेम से अथवा लोभ से [कुदेवागमलिङ्गिनाम्] कुदेव, कुशास्त्र और कुगुरुओं को [प्रणामम्] प्रणाम [च] और [विनयम्] विनय [एव] भी [न कुर्य्यु:] नहीं करे ॥३०॥

सम्यग्दर्शन की श्रेष्ठता

दर्शनं ज्ञानचारित्रात्साधिमानमुपाश्नुते
दर्शनं कर्णधारं तन्मोक्षमार्गे प्रचक्षते ॥31॥
अन्वयार्थ : [यत्] जिस कारण [ज्ञानचारित्रात्] ज्ञान और चारित्र की अपेक्षा [दर्शनम्] सम्यग्दर्शन [साधिमानम्] श्रेष्ठता या उच्चता को [उपाश्नुते] प्राप्त होता है [तत्] उस कारण से [दर्शनम्] सम्यग्दर्शन को [मोक्षमार्गे] मोक्षमार्ग के विषय में [कर्णधारम्] खेवटिया [प्रचक्षते] कहते हैं ॥३१॥

सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान चारित्र की असम्भवता

विद्यावृत्तस्य सम्भूति-स्थितिवृद्धिफलोदया:
न सन्त्यसति सम्यक्त्वे, बीजाभावे तरोरिव ॥32॥
अन्वयार्थ : [बिजाभावे] बीज के अभाव में [तरो:इव] वृक्ष की तरह [सम्यक्त्वे असति] सम्यग्दर्शन के न होने पर [विद्यावृत्तस्य] ज्ञान और चरित्र की [सम्भूति-स्थितिवृद्धिफलोदया:] उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि और फल प्राप्ति [न सन्ति] नहीं होती ॥३२॥

मोही मुनि की अपेक्षा निर्मोही गृहस्थ श्रेष्ठ

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो नैव मोहवान्
अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुनेः ॥33॥
अन्वयार्थ : [निर्मोह:] मोह-मिथ्यात्व से रहित [गृहस्थ:] गृहस्थ [मोक्षमार्गस्थ:] मोक्षमार्ग में स्थित है परन्तु [मोहवान्] मोह-मिथ्यात्व से सहित [अनगार:] मुनि [नैव] मोक्षमार्ग में स्थित नहीं है [मोहिन:] मोही मिथ्यादृष्टि [मुने:] मुनि की अपेक्षा [निर्मोह:] मोह-रहित सम्यग्दृष्टि [गृही] गृहस्थ [श्रेयान्] श्रेष्ठ [अस्ति] है ।

श्रेय और अश्रेय का कथन

न सम्यक्त्वसमं किञ्चित्, त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि

श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्व-समं नान्यत्तनूभृताम् ॥34॥
अन्वयार्थ : [तनूभृताम्] प्राणियों के [त्रैकाल्ये] तीनों कालों और [त्रिजगत्यपि] तीनों लोकों में भी [सम्यक्त्वसमं] सम्यग्दर्शन के समान [श्रेय:] कल्याणरूप और मिथ्यादर्शन के समान [अश्रेय:] अकल्याणरूप [किंचित] किंचित [अन्यत्] दूसरा [न] नहीं है ।

सम्यग्दृष्टि के अनुत्पत्ति के स्थान

सम्यग्दर्शनशुद्धा नारकतिर्यङ्नपुंसकस्त्रीत्वानि
दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजन्ति नाप्यव्रतिकाः ॥35॥
अन्वयार्थ : [सम्यग्दर्शनशुद्धा] सम्यग्दर्शन से शुद्ध जीव [अव्रतिका:] व्रतरहित होने पर [अपि] भी [नारकतिर्यङ्नपुंसकस्त्रीत्वानि] नारक, तिर्यञ्च, नपुंसक और स्त्रीपने को [च] तथा [दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां] नीचकुल, विकलांग अवस्था, अल्पआयु और दरिद्रता को [न व्रजन्ति] प्राप्त नहीं होते ।

सम्यग्दृष्टि जीव श्रेष्ठ मनुष्य होते हैं

ओजस्तेजोविद्या-वीर्ययशोवृद्धिविजयविभवसनाथाः
माहाकुला महार्था मानवतिलकाः भवन्ति दर्शनपूताः ॥36॥
अन्वयार्थ : [दर्शनपूताः] सम्यग्दर्शन से पवित्र जीव [ओज: तेजो:] उत्साह, प्रताप / कान्ति, [विद्या] विद्या, [वीर्य] पराक्रम, [यशो:] यश, [वृद्धि] उन्नति, विजय, [विभवसनाथा] वैभव से सहित [माहाकुला:] उच्च कुलोत्पन्न, [महार्था:] पुरुषार्थयुक्त तथा [मानवतिलकाः] मनुष्यों में श्रेष्ठ [भवन्ति] होते हैं ।

सम्यग्दृष्टि जीव इंद्र पद पाते हैं

अष्टगुणपुष्टितुष्टा दृष्टिविशिष्टाः प्रकृष्टशोभाजुष्टाः
अमराप्सरसां परिषदि चिरं रमन्ते जिनेन्द्रभक्ताः स्वर्गे ॥37॥
अन्वयार्थ : [दृष्टिविशिष्टाः] सम्यग्दर्शन से सहित [जिनेन्द्रभक्ताः] जिनेन्द्र भगवान के भक्त पुरुष [स्वर्गे] स्वर्ग में [अमराप्सरसां] देव-देवियों की [परिषदि] सभा में [अष्टगुणपुष्टितुष्टा] अणिमा आदि आठ गुण तथा शारीरिक पुष्टि अथवा अणिमा आदि आठ गुणों की पुष्टि से सन्तुष्ट और [प्रकृष्टशोभाजुष्टा] बहुत भारी शोभा से युक्त होते हुए [चिरं] चिरकाल तक [रमन्ते] क्रीड़ा करते हैं ।

सम्यग्दृष्टि ही चक्रवर्ती होते हैं

नवनिधिसप्तद्वयरत्ना-धीशा: सर्व-भूमि-पतयश्चक्रम्
वर्तयितुं प्रभवन्ति स्पष्टदृश:, क्षत्रमौलिशेखरचरणा: ॥38॥
अन्वयार्थ : [स्पष्टदृश:] निर्मल सम्यग्दर्शन के धारक मनुष्य ही [नवनिधि] नौ निधियों [सप्तद्वय] और चौदह [रत्ना-धीशा:] रत्नों के स्वामी तथा [क्षत्र] राजाओं के [मौलि] मुकुटों सम्बन्धी [शेखर] कलगियों पर जिनके [चरणा:] चरण हैं ऐसे [सर्व-भूमि-पतय] छ: खंड का अधिपति -- चक्रवर्ती होते हुए [चक्रम्] चक्ररत्न को [वर्तयितुं] वर्ताने के लिए [प्रभवन्ति] समर्थ होते हैं ।

सम्यग्दृष्टि ही तीर्थंकर होते हैं

अमरासुरनरपतिभिर्यमधरपतिभिश्चनूतपादाम्भोजाः
दृष्ट्या सुनिश्चितार्था वृषचक्रधरा भवन्ति लोकशरण्याः ॥39॥
अन्वयार्थ : [दृष्ट्या] सम्यग्दर्शन के माहात्म्य से जीव [अमरपतय:] उर्ध्वलोक का स्वामी -- देवेन्द्र, [असुरपतय:] अधोलोक का स्वामी -- धरणेन्द्र [नरपतिभि:] मनुष्यों के स्वामी -- चक्रवर्ति और [च] तथा [यमधर] मुनियों के [पतिभि:] स्वामी -- गणधरों के द्वारा जिनके [पादा] चरण [अम्भोजा:] कमलों की [नूत] स्तुति की जाती है, [सुनिश्चितार्था:] जिन्होंने पदार्थ का अच्छी तरह निश्चय किया है तथा जो [लोकशरण्याः] तीनों लोकों के शरणभूत हैं, ऐसे [वृष] धर्म [चक्रधरा:] चक्र के धारक तीर्थंकर [भवन्ति] होते हैं ।

सम्यग्दृष्टि ही मोक्ष-पद प्राप्त करते हैं

शिवमजरमरुजमक्षयमव्याबाधं विशोकभयशङ्कम्

काष्ठागतसुखविद्याविभवं विमलं भजन्ति दर्शनशरणाः ॥40॥

अन्वयार्थ : [दर्शनशरणाः] सम्यग्दृष्टि जीव [अजरम्] वृद्धावस्था से रहित, [अरुजम्] रोग से रहित, [अक्षयम्] क्षय से रहित, [अव्याबाधाम्] बाधाओं से रहित, [विशोकभयशङ्कम्] शोक, भय और शंका से रहित [काष्ठागतसुखविद्याविभवं] सर्वोत्कृष्ट सुख और ज्ञान के वैभव से सहित तथा [विमलं] द्रव्य-भाव-नोकर्म-रूप मल से रहित [शिवम्] मोक्ष को [भजन्ति] प्राप्त होते हैं ।

उपसंहार

देवेन्द्रचक्रमहिमानममेयमानम्,

राजेन्द्रचक्रमवनीन्द्रशिरोर्चनीयम् ।

धर्मेन्द्रचक्रमधरीकृतसर्वलोकम्,

लब्ध्वा शिवं च जिनभक्तिरुपैति भव्यः ॥41॥

अन्वयार्थ : [जिनभक्ति] जिनेन्द्र भगवान का भक्त [भव्यः] सम्यग्दृष्टि पुरुष [अमेयमानम्] अपरिमित प्रतिष्ठा अथवा ज्ञान से सहित [देवेन्द्रचक्रमहिमानम्] इन्द्र समूह की महिमा को [अवनीन्द्रशिरोर्चनीयम्] मुकुटबद्ध राजाओं के मस्तकों से पूजनीय [राजेन्द्रचक्रम] चक्रवर्ती के चक्र-रत्न को [च] और [अधरीकृतसर्वलोकम्] समस्त-लोक को नीचा करने वाले [धर्मेन्द्रचक्रम] तीर्थंकर के धर्म-चक्र को [लब्ध्वा] प्राप्त कर [शिवं] मोक्ष को [उपैति] प्राप्त होता है ।

सम्यग्ज्ञान का लक्षण

अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं विना च विपरीतात्

निःसन्देहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः ॥1॥

अन्वयार्थ : [यत्] जो ज्ञान, पदार्थ को [अन्युनम्] न्यूनता रहित, [अनतिरिक्तं] अधिकता रहित, [याथातथ्यं] ज्यों का त्यों, [विपरीतात विना] विपरीतता रहित [च] और [नि:संदेहं] सन्देह रहित [वेद] जानता है, [तत्] उस ज्ञान को [आगमिन:] गणधर / श्रुतकेवली, [ज्ञान] सम्यग्ज्ञान [आहू:] कहते हैं ।

प्रथमानुयोग

प्रथमानुयोगमर्थाख्यानं चरितं पुराणमपि पुण्यम्

बोधिसमाधिनिधानं बोधति बोधः समीचीनः ॥2॥

अन्वयार्थ : [समीचीनः बोधः] सम्यक् श्रुतज्ञान [अर्थाख्यानं] परमार्थ विषय का कथन करने वाले [चरितं] एक पुरुषाश्रित कथा और [पुराणम्] त्रेशठशलाका पुरुष-सम्बन्धि कथारूप [अपि] और [पुण्यम्] पुण्यवर्धक तथा [बोधि] ज्ञान और [समाधि] समता के [निधानं] खजाने [प्रथमानुयोगम्] प्रथमानुयोग को [बोधति] जानता है ।

करणानुयोग

लोकालोकविभक्तेर्युगपरिवृत्तेश्चतुर्गतीनां च

आदर्शमिव तथामतिरवैति करणानुयोगं च ॥3॥

अन्वयार्थ : [तथा] प्रथमानुयोग की तरह [मति:] मननरूप श्रुतज्ञान, [लोकालोकविभक्ते:] लोक और अलोक के विभाग को, [युगपरिवृत्ते:] युगों के परिवर्तन [च] और [चतुर्गतीनां] चारों गतियों के लिये [आदर्शम्] दर्पण के [इव] समान करणनुयोग को भी [अवैति] जानता है ।

चरणानुयोग

गृहमेध्यनगाराणां चारित्रोत्पत्तिवृद्धिरक्षाङ्गम्
चरणानुयोगसमयं सम्यग्ज्ञानं विजानाति ॥4॥

अन्वयार्थ : [सम्यग्ज्ञानं] भावश्रुतरूप सम्यग्ज्ञान [गृहमेध्य] गृहस्थ और [अनगाराणां] मुनियों के [चारित्र] चरित्र की [उत्पति] उत्पत्ति, [वृद्धि] वृद्धि और [रक्षाङ्गम्] रक्षा के कारणभूत [चरणानुयोग] चरणानुयोग [समयं] शास्त्र को [विजानाति] जानता है ।

द्रव्यानुयोग

जीवाजीवसुतत्त्वे पुण्यापुण्ये च बन्धमोक्षौ च
द्रव्यानुयोगदीपः श्रुतविद्यालोकमातनुते ॥5॥

अन्वयार्थ : [द्रव्यानुयोगदीपः] द्रव्यानुयोगरूपी दीपक [जीवाजीवसुतत्त्वे] जीव, अजीव, प्रमुख तत्त्वों को [पुण्यापुण्ये] पुण्य और पाप को [बन्धमोक्षौ] बन्ध और मोक्ष को तथा चकार से आस्रव संवर और निर्जरा को [श्रुतविद्यालोकम्] भाव-श्रुतज्ञान-रूप प्रकाश को फैलाता हुआ [आतनुते] विस्तृत करता है ।

चारित्र की आवश्यकता

मोहतिमिरापहरणे दर्शनलाभादवाप्तसंज्ञानः
रागद्वेषनिवृत्त्यै चरणं प्रतिपद्यते साधुः ॥47॥

अन्वयार्थ : [मोह] दर्शन-मोह रूपी [तिमिर] अंधकार के [अपहरणे] दूर होने पर [दर्शन] सम्यग्दर्शन की [लाभात्] प्राप्ति से जिसे [संज्ञानः] सम्यग्ज्ञान [अवाप्त] प्राप्त हुआ है ऐसा [साधुः] भव्य जीव [रागद्वेषनिवृत्यै] रागद्वेष की निवृत्ति के लिए [चरणं] चारित्र को [प्रतिपद्यते] धारण करते है ।

चारित्र कब होता है?

रागद्वेषनिवृत्तेर्हिंसादिनिवर्तना कृता भवति
अनपेक्षितार्थवृत्तिः कः पुरुषः सेवते नृपतीन् ॥48॥

अन्वयार्थ : [रागद्वेषनिवृत्तेः] रागद्वेष की निवृत्ति से [हिंसादि निवर्त्तनः] हिंसादि पापो की निवृत्ति [कृता भवति] स्वयं हो जाती है [अनपेक्षितार्थवृत्तिः] जिसे किसी प्रयोजन-रूप फल की प्राप्ति अभिलषित न हो [कः पुरूषः] कौन पुरूष [नृपतीन् सेवते] राजाओं की सेवा करता है ।

चारित्र का लक्षण

हिंसानृतचौर्येभ्यो, मैथुनसेवापरिग्रहाभ्यां च
पापप्रणालिकाभ्यो, विरति: संज्ञस्य चारित्रम् ॥49॥

अन्वयार्थ : हिंसा, [नृत] झूठ, चोरी, [मैथुन] कुशील और परिग्रह ये पांच [पापप्रणालिकाभ्यो] पाप की नाली के समान पापों के आने के कारण हैं, इनसे विरति का [संज्ञस्य] नाम ही चारित्र है ।

चारित्र के भेद और उपासक

सकलं विकलं चरणं, तत्सकलं सर्वसङ्गविरतानाम्
अनगाराणां विकलं, सागाराणां ससङ्गानाम् ॥50॥

अन्वयार्थ : [चरणं] चारित्र दो प्रकार का कहा है -- [सकलं विकलं] सकल-चारित्र और विकल-चारित्र । [तत्] इनमें सकल चारित्र तो [सर्व] सम्पूर्ण [सङ्ग] परिग्रह से [विरतानाम्] विरक्त, ऐसे [अनगाराणां] मुनि को कहा है और विकल-चारित्र को [ससङ्गानाम्] परिग्रह सहित [सागाराणां] गृहस्थ धारण करते हैं ।

विकल चारित्र के भेद

गृहिणां त्रेधा तिष्ठत्यणु-गुण शिक्षाव्रतात्मकं चरणं
पञ्च-त्रि-चतुर्भेदं त्रयं यथासंख्यमाख्यातम् ॥51॥

अन्वयार्थ : [गृहिणां] गृहस्थों का [चरणं] विकल-चारित्र [अणु-गुण-शिक्षाव्रतात्मकं] अणुव्रत, गुणव्रत, शिक्षाव्रत के भेद से [त्रेधा] तीन प्रकार का [तिष्ठति] है उन [त्रयं] तीनों मे [यथासंख्यं] प्रत्येक के क्रमश: [पञ्च-त्रि-चतुर्भेदं] पञ्च, तीन व चार भेद [अख्यातं] कहे गए हैं

अणुव्रत का लक्षण

प्राणातिपातवितथ व्याहारस्तेय काम मूर्च्छाभ्यः
स्थूलेभ्य: पापेभ्यो व्युपरमणमणुव्रतं भवति ॥52॥

अन्वयार्थ : [प्राणातिपात] हिंसा, [वितथव्याहार] झूठ, [स्तेय] चोरी, [काम] कुशील और [मूर्च्छा] परिग्रह [स्थूलेभ्यः] स्थूल रूप से [पापेभ्यः] पापों से [व्युपरमणं] विरत होना [अणुव्रतं] अणुव्रत [भवति] है ।

अहिंसा अणुव्रत

सङ्कल्पात्कृतकारितमननाद्योगत्रयस्य चरसत्वान्
न हिनस्ति यत्तदाहुः स्थूलवधाद्विरमणं निपुणाः ॥53॥

अन्वयार्थ : [यत्] जो [योगत्रयस्य] मन-वचन-काय के [कृतकारितमननात्] कृत, कारित, अनुमोदना रूप [सङ्कल्पात्] संकल्प से [चर] त्रस [सत्त्वान्] जीवों को [न हिनस्ति] नहीं मारता है [तत्] उसे, [निपुणा:] गणधर आदिक [स्थूलवधात्] स्थूल-हिंसा से [विरमणम्] विरक्त होना अर्थात् अहिंसाणुव्रत [आहु] कहते हैं ।

अहिंसा अणुव्रत के अतिचार

छेदनबन्धनपीडनमतिभारारोपणं व्यतीचाराः
आहारवारणापि च स्थूलवधाद् व्युपरतेः पञ्च ॥54॥

अन्वयार्थ : [स्थूलवधाद् व्युपरतेः] स्थूल-वध से विरत (अहिंसाणुव्रत) के, [छेदनबन्धनपीडनम्] छेदना, बांधना, पीड़ा देना, [अतिभारारोपणम्] अधिक भार लादना [अपि] और [आहारवारणा] आहर का रोकना [एते] ये पाँच [व्यतीचाराः] अतिचार हैं ।

सत्याणुव्रत

स्थूलमलीकं न वदति न परान् वादयति सत्यमपि विपदे
यत्तद्वदन्ति सन्तः स्थूलमृषावादवैरमणम् ॥55॥

अन्वयार्थ : [यत्] जो [स्थुलम्] स्थूल [अलीकम्] झूठ को [न वदति] न स्वयं बोलता है [च] और न [परान्] दूसरों से [वादयति] बुलवाता है और [विपदे] ऐसा [सत्यम्] सत्य [अपि] भी न स्वयं बोलता है न दूसरों से बुलवाता है जो दूसरे के प्राणघात के लिये हो [तत्] उसे [संत:] सत्पुरुष [स्थूलमृषावादवैरमणम्] स्थूल झूठ का त्याग अर्थात् सत्याणुव्रत [वदन्ति] कहते हैं ।

सत्याणुव्रत के अतिचार

परिवाद-रहोभ्याख्या-पैशून्यं कूटलेखकरणं च
न्यासापहारितापि च, व्यतिक्रमा: पञ्च सत्यस्य ॥56॥

अन्वयार्थ : [परिवाद] झूठा उपदेश देना, [रहोभ्याख्या] अन्यों की एकांत की गुप्त क्रियाओं को प्रगट करना, [पैशुन्य] पर की चुगली निन्दा करना, [कूटलेखकरण] झूठे लेख दस्तावेज आदि लिखना और [न्यासापहार] यदि कोई धरोहर की संख्या को भूल जावे तो उसे उतनी ही कहकर बाकी हड़प लेना, सत्याणुव्रत के ये [पञ्च] पांच [व्यतिक्रम] अतिचार हैं ।

अचौर्याणुव्रत

निहितं वा पतितं वा सुविस्मृतं वा परस्वमविसृष्टं

न हरति यन्न च दत्ते तदकृशचौर्य्यादुपारमणम् ॥57॥

अन्वयार्थ : [निहितं] रखे हुए [वा] या [पतितं] पड़े हुए अथवा [सुविस्मृतं] बिल्कुल भूले हुए [अविसृष्टं] बिना दिये हुए [परस्वम] दूसरे के धन को [न हरति] न स्वयं लेता है और [न च दत्ते] न किसि दूसरे को देता है वह [अकृशचौर्य्यात्] स्थूलचोरी का [उपारमणम्] परित्याग अर्थात् अचौर्याणुव्रत है ।

अचौर्याणुव्रत के अतिचार

चौरप्रयोगचौरार्थादानविलोपसदृशसन्मिश्राः

हीनाधिकविनिमानं पञ्चास्तेये व्यतीपाताः ॥58॥

अन्वयार्थ : [चौरप्रयोग] चोरी में सहयोग देना, [चौरार्थादान] चोरी का माल खरीदना, [विलोप] राज्य-विरुद्ध / गैर-कानूनी कार्य करना, [सदृशसन्मिश्र] अनुचित लाभ के लिए असली वस्तु में नकली वस्तु मिलाकर बेचना और [हीनाधिक-विनिमान] नाप-तोल में हेरा-फेरी करना, ये पाँच [अस्तेये] अचौर्याणुव्रत के [व्यतीपाताः] अतिचार हैं ।

ब्रह्मचर्य अणुव्रत

न तु परदारान् गच्छति न परान् गमयति च पापभीतेर्यत्

सा परदारनिवृत्तिः स्वदारसन्तोषनामापि ॥59॥

अन्वयार्थ : [यत्] जो [पापभीते:] पाप के भय से [परदारान्] परस्त्रियों के प्रति [न तु] न तो [गच्छति] स्वयं गमन करता है [च] और [न परान्] न दूसरों को [गमयति] गमन कराता है [सा] वह [परदारनिवृत्ति:] परस्त्री-त्याग [अपि] तथा [स्वदारसन्तोषनाम] स्वदारसन्तोष नाम का अणुव्रत है ।

ब्रह्मचर्याणुव्रत के अतिचार

अन्यविवाहाकरणानङ्गक्रीडाविटत्वविपुलतृषः

इत्वरिकागमनं चास्मरस्य पञ्च व्यतीचाराः ॥60॥

अन्वयार्थ : [अन्याविवाहाकरण] अपने व आश्रित कि संतान को छोड़कर अन्य का विवाह कराना, [अनंगक्रीडा] कामसेवन के निश्चित अंगो को छोड़कर अन्य अंगो से सेवन करना, [विटत्व] शरीर से कुचेष्टा करना, मुख से अश्लील शब्द बोलना [विपुलतृषः] कामसेवन की तीव्र अभिलाषा होना [इत्वरिकागमनं] व्याभिचारिणी स्त्री / वेश्यादि के पास आना जाना, ये पांच [अस्मरस्य] ब्रह्मचर्य अणुव्रत के अतिचार हैं ।

परिग्रह परिमाण अणुव्रत

धनधान्यादिग्रन्थं परिमाय ततोऽधिकेषु निःस्पृहता

परिमितपरिग्रहः स्यादिच्छापरिमाणनामापि ॥61॥

अन्वयार्थ : [धनधान्यादिग्रन्थं] धन, धान्यादि का परिग्रह [परिमाय] परिमाण कर [तत् अधिकेषु] उससे अधिक मे [निःस्पृहता] वांछा रहित होना [परिमितपरिग्रहः] परिमित परिग्रह या [इच्छापरिमाणनामापि] इच्छापरिमाण नामक अणुव्रत है ॥

परिग्रह परिमाण अणुव्रत के अतिचार

अतिवाहनातिसङ्ग्रह-विस्मयलोभातिभारवहनानि

परिमितपरिग्रहस्य च, विक्षेपा: पञ्च लक्ष्यन्ते ॥62॥

अन्वयार्थ : [अतिवाहन] लोभवश पशु आदि को उनकी क्षमता से अधिक चलाना, [अतिसंग्रह] लोभवश अधिक धान्यदि संगृहीत करना,

[अतिविस्मय] अधिक मूल्य प्राप्त करने के लिए वस्तु को कुछ समय रोक कर बेचना [अतिलोभ] अधिकलाभ की आकांक्षा रखना [अतिभारवाहन] लोभ वश अधिक भार लादना [परिमितपरिग्रहस्य च] परिग्रह-परिमाणाणुव्रत के भी [पञ्च] पांच [विक्षेपाः] अतिचार [लक्ष्यते] निश्चित किये जाते है ॥

पंचाणु व्रत का फल

पञ्चाणुव्रतनिधयो, निरतिक्रमणा: फलन्ति सुरलोकम्

यत्रावधिरष्टगुणा, दिव्यशरीरं च लभ्यन्ते ॥63॥

अन्वयार्थ : [निरतिक्रमणाः] अतिचार रहित [पंञ्च] पांच [अणुव्रतनिधयः] अणुव्रत रूपी निधियां [तं सुरलोकं फलन्ति] उसे स्वर्ग-लोक का फल देती है [च] और [यत्रावधिरष्टगुणा] जिसमे अवधि ज्ञान अणिमा-महिम आदि ८ गुण [च दिव्य शरीरं] और ७ धातुओं से रहित वैक्रियिक-शरीर [लभ्यन्ते] प्राप्त होता है ।

पंचाणुव्रत में प्रसिद्ध नाम

मातङ्गो धनदेवश्च वारिषेणस्ततः परः

नीली जयश्च सम्प्राप्ताः पूजातिशयमुत्तमम् ॥64॥

अन्वयार्थ : [मातङ्ग:] अहिंसा अणुव्रत में यमपाल चांडाल, [घनदेव:] सत्य अणुव्रत में घनदेव, [वारिषेण:] अचौर्य अणुव्रत में वारिषेण, [नीली] ब्रह्मचर्य अणुव्रत में वणिक-पुत्री नीलीसती और [जय:] जयकुमार ने परिग्रह का परिमाण करके पूजा के अतिशय को [संप्राप्ता] प्राप्त हुए हैं ॥६४॥

पांच पाप में प्रसिद्ध नाम

धनश्रीसत्यघोषौ च, तापसारक्षकावपि

उपाख्येयास्तथा श्मश्रु-नवनीतो यथाक्रमम् ॥65॥

अन्वयार्थ : [धनश्रीसत्यघोषौ च] धनश्री और सत्यघोष [तापसारक्षकौ] तापस और कोतवाल [अपि] और [श्मश्रु-नवनीत:] श्मश्रुनवनीत ये पाँच [यथाक्रमम्] क्रम से हिंसादि पापों में [उपाख्येया:] उपाख्यान करने (दृष्टान्त देने) के योग्य हैं ।

श्रावक के आठ मूलगुण

मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपञ्चकम्

अष्टौ मूलगुणानाहुर्गृहिणां श्रमणोत्तमाः ॥66॥

अन्वयार्थ : [श्रमणोत्तमाः] मुनियों में उत्तम गणधरादिक देव [मद्यमांसमधुत्यागैः] मद्यत्याग, मांसत्याग और मधुत्याग [सह] के साथ [अणुव्रतपञ्चकम्] पाँच अणुव्रतों को [गृहिणां] गृहस्थों के [अष्टौ] आठ [मूलगुणान्] मूलगुण [आहू:] कहते हैं ।

गुणव्रतों के नाम

दिग्व्रतमनर्थदण्ड, व्रतं च भोगोपभोग-परिमाणं

अनुवृंहणाद् गुणाना-माख्यान्ति गुणव्रतान्यार्या: ॥67॥

अन्वयार्थ : [आर्या:] तीर्थङ्कर देव आदि उत्तम पुरुष, [गुणानाम्] आठ मूलगुणों की [अनुवृंहणाद्] वृद्धि करने के कारण [दिग्व्रतम] दिग्व्रत, [अनर्थदण्डव्रतम्] अनर्थदण्डव्रत और [भोगोपभोग-परिमाणं] भोगोपभोग-परिमाण-व्रत को [गुणव्रतानि] गुणव्रत [आख्यान्ति] कहते हैं ।

दिग्व्रत का लक्षण

दिग्वलयं परिगणितं कृत्वातोऽहं बहिर्न यास्यामि

इति सङ्कल्पो दिग्व्रतमामृत्यणुपापविनिवृत्यै ॥68॥

अन्वयार्थ : [आमृति] मरणपर्यन्त [अणुपापविनिवृत्यै] सूक्ष्म पापों की निवृत्ति के लिए [दिग्वलयं] दिशाओं के समूह को [परिगणितं] मर्यादा सहित [कृत्वा] करके [अहम्] मैं [अत:] इससे [बहि:] बाहर [न] नहीं [यास्यामि] जाऊँगा, [इति] ऐसा [संकल्प:] संकल्प करना दिग्व्रत होता है ।

मर्यादा की विधि

मकराकरसरिदटवीगिरिजनपदयोजनानि मर्यादाः

प्राहुर्दिशां दशानां प्रतिसंहारे प्रसिद्धानि ॥69॥

अन्वयार्थ : [दशानां] दसों [दिशाम्] दिशाओं के [प्रतिसंहारे] परिमाण करने में [प्रसिद्धानि] प्रसिद्ध [मकराकर] समुद्र, [सरित्] नदी, [अटवी] जंगल, [गिरी] पर्वत, [जनपद] देश और [योजनानि] योजन को मर्यादा [प्राहु:] कहते हैं ।

दिग्व्रती के महाव्रतपना

अवधे-र्बहिरणुपाप-प्रतिविरतेर्दिग्व्रतानि धारयतां

पञ्च महाव्रतपरिणति-मणुव्रतानि प्रपद्यन्ते ॥70॥

अन्वयार्थ : [दिग्व्रतानि धारयताम्] दिग्व्रतों के धारक [अणुव्रतानि अबधेःबहिः] अणुव्रत की मर्यादा के बाहर [अणुपाप प्रति विरतेः] सूक्ष्म पापो की भी निवृति हो जाने से [पञ्च महाव्रत परिणति] पञ्च-महाव्रत रूप परिणति को [प्रपद्यन्ते] प्राप्त होते हैं ।

सो कैसे ? उसका समाधान

प्रत्याख्यानतनुत्वान्, मन्दतराश्चरणमोहपरिणामा:

सत्त्वेन दुखधारा, महाव्रताय प्रकल्प्यन्ते ॥71॥

अन्वयार्थ : [प्रत्याख्यानतनुत्वात्] प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ का मन्द उदय होने से [मन्दतारा:] अत्यन्त मन्द अवस्था को प्राप्त हुए, यहाँ तक कि [सत्त्वेन दुखधारा:] जिनके अस्तित्व का निर्धारण करना भी कठिन है ऐसे [चरणमोहपरिणामा:] चारित्रमोह के परिणाम [महाव्रताय] महाव्रत के व्यवहार के लिए [प्रकल्प्यन्ते] उपचरित होते हैं- कल्पना किये जाते हैं ।

महाव्रत का लक्षण

पञ्चानां पापानां हिंसादीनां मनोवचःकायैः

कृतकारितानुमोदैस्त्यागस्तु महाव्रतं महताम् ॥72॥

अन्वयार्थ : [हिंसादीनां] हिंसा आदिक [पञ्चानां] पाँच [पापानां] पापों का [मनोवचःकायैः] मन-वचन-काय और [कृतकारितानुमोदै:] कृत-कारित-अनुमोदना से [त्याग:] त्याग करना [महतां] प्रमत्तविरत आदि गुणस्थानवर्ती महापुरुषों का [महाव्रतं] महाव्रत [भवति] होता है ।

दिग्व्रत के अतिचार

ऊर्ध्वाधस्तात्तिर्यग्व्यतिपाताः क्षेत्रवृद्धिरवधीनाम्

विस्मरणं दिग्विरतेरत्याशाः पञ्च मन्यन्ते ॥73॥

अन्वयार्थ : अज्ञान अथवा प्रमाद से [ऊर्ध्व] ऊपर, [अधस्तात्] नीचे [तिर्यग्] और समान धरातल की [व्यतिपाताः] सीमा का उल्लंघन करना, [क्षेत्रवृद्धि] क्षेत्र की मर्यादा को बढ़ा लेना और [अवधीनाम्] की हुई मर्यादा को [विस्मरणम्] भूल जाना, ये [पञ्च] पाँच [दिग्विरते:] दिग्विरति व्रत के [अत्याशा:] अतिचार [मन्यन्ते] माने जाते हैं ।

अनर्थदण्ड व्रत

अभ्यन्तरं दिगवधेरपार्थिकेभ्यः सपापयोगेभ्यः
विरमणमनर्थदण्डव्रतं विदुर्व्रतधराग्रण्यः ॥74॥
अन्वयार्थ : [व्रतधराग्रण्यः] व्रत धारण करने वाले मुनियों में प्रधान तीर्थङ्कर-देवादि [दिगवधे:] दिग्व्रत की सीमा के [अभ्यन्तरं] भीतर [अपार्थिकेभ्यः] प्रयोजन रहित [सपापयोगेभ्यः] पापसहित योगों से [विरमणमन] निवृत्त होने को [अनर्थदण्डव्रतं] अनर्थदण्डव्रत [विदु:] कहते हैं ।

अनर्थदण्ड के भेद

पापोपदेशहिंसादानापध्यानदुःश्रुतीः पञ्च
प्राहुः प्रमादचर्यामनर्थदण्डानदण्डधराः ॥75॥
अन्वयार्थ : [अदण्डधराः] गणधरदेवादिक [पापोपदेशहिंसादानापध्यानदुःश्रुतीः] पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दु:श्रुति और [प्रमादचर्याम्] प्रमादचर्या [पंच] इन पाँच को [अनर्थदण्डान्] अनर्थदण्ड [प्राहु:] कहते हैं ।

पापोपदेश का लक्षण

तिर्यक्क्लेशवणिज्याहिंसारम्भप्रलम्भनादीनाम्
कथाप्रसङ्गः प्रसवः स्मर्त्तव्यः पाप उपदेशः ॥76॥
अन्वयार्थ : [तिर्यक्क्लेशवणिज्या] पशुओं को क्लेश पहुँचाने वाली क्रियाएँ, ऐसा व्यापार, [हिंसारम्भ] हिंसा, आरम्भ तथा [प्रलम्भनादीनाम्] ठगई आदि की [कथाप्रसङ्गः] कथाओं के प्रसङ्ग [प्रसव:] उत्पन्न करना [पाप उपदेश:] पापोपदेश नाम का अनर्थदण्ड [स्मर्त्तव्यः] स्मरण करना चाहिए ।

हिंसादान अनर्थदण्ड

परशुकृपाणखनित्र-ज्वलनायुध-श्रृङ्गिश्रृङ्खलादीनाम्
वधहेतूनां दानं हिंसादानं ब्रुवन्ति बुधाः ॥77॥
अन्वयार्थ : [बुधाः] गणधरदेवादिक विज्ञपुरुष [परशु] फरसा, [कृपाण] तलवार, [खनित्र] कुदारी, [ज्वलनायुध] अग्नि, शस्त्र, [श्रृङ्गि] विष तथा [श्रृङ्खलादीनाम्] सांकल आदिक [वधहेतूनां] हिंसा के कारणों के [दानं] दान को [हिंसादानं] हिंसादान नाम का अनर्थदण्ड [ब्रुवन्ति] कहते हैं ।

अपध्यान अनर्थदण्ड

वधबन्धच्छेदादेर्द्वेषाद्रागाच्च परकलत्रादेः
आध्यानमपध्यानं शासति जिनशासने विशदा: ॥78॥
अन्वयार्थ : [जिनशासने विशदा:] जिनागम में निपुण पुरुष [द्रवेषात्] द्वेष के कारण किसी के [वधबन्धच्छेदादे] नाश होने, बांधे जाने और छेदे जाने आदि का [च] तथा [रागात्] राग के कारण [परकलत्रादे:] परस्त्री आदि का [आध्यानम्] चिन्तन करने को [अपध्यान्म्] अपध्यान नाम का अनर्थ-दण्ड [शासति] कहते हैं ।

दु:श्रुति अनर्थदण्ड

आरम्भसङ्गसाहस - मिथ्यात्वद्वेषरागमदमदनै:
चेत: कलुषयतां श्रुति-रवधीनां दु:श्रुतिर्भवति ॥79॥
अन्वयार्थ : आरंभ, [संग] परिग्रह, साहस, मिथ्यात्व, राग, द्वेष, [मदमदनै:] मद और कामभोग लोभ आदि से [चेत:] मन को [कलुशयताम्] मलिन करने वाले ऐसे [अवधीनाम्] शास्त्रों / पुस्तकों का [श्रुति] सुनना या पढ़ना अथवा पढ़ाना यह सब दु:श्रुति नाम का अनर्थदण्ड [भवति] है ॥

प्रमादचर्या अनर्थदण्ड

क्षितिसलिलदहनपवनारम्भं विफलं वनस्पतिच्छेदम्

सरणं सारणमपि च प्रमादचर्यां प्रभाषन्ते ॥80॥

अन्वयार्थ : [विफलं] निष्प्रयोजन [क्षिति] पृथिवी, [सलिल] पानी, [दहन] अग्नि और [पवन] वायु सम्बन्धी पाप करना, [वनस्पतिच्छेदम्] वनस्पति का छेदना, [सरणं] स्वयं घूमना [च] और [सारणम्] दूसरों को घुमाना [अपि] भी, इस सबको प्रमादचर्या नाम का अनर्थदण्ड [प्रभाषन्ते] कहते हैं ।

अनर्थदण्डव्रत के अतिचार

कन्दर्पं कौत्कुच्यं मौखर्यमतिप्रसाधनं पञ्च

असमीक्ष्य चाधिकरणं व्यतीतयोऽनर्थदण्डकृद्विरतेः ॥81॥

अन्वयार्थ : [कन्दर्पं] हंसी करते हुए अशिष्ट वचन बोलना, [कौत्कुच्यं] शरीर की कुचेष्टा करना, [मौखर्यम्] बकवास करना, [अतिप्रसाधनं] भोगोपभोग की सामग्री का अधिक संग्रह करना [च] और [असमीक्ष्य अधिकरणं] बिना प्रयोजन के ही किसी कार्य का अधिक आरम्भ करना ये [पञ्च] पाँच अनर्थदण्ड-विरति-व्रत के [व्यतीतय:] अतिचार हैं ।

भोगोपभोग परिमाण गुणव्रत

अक्षार्थानां परिसंख्यानं भोगोपभोगपरिमाणम् **अर्थ**वतामप्यवधौ रागरतीनां तनूकृतये ॥82॥

अन्वयार्थ : [अर्थवताम्] प्रयोजनभूत [अपि] भी [अवधौ] विषयों के परिणाम के भीतर [रागरतीनां] विषय संबंधी राग से होने वाली आसक्तियों को [तनूकृतये] कृश करने के लिए [अक्षार्थानां] इंद्रिय विषयों का [परिसंख्यानं] परिगणन करना / सीमा निर्धारित करना [भोगोपभोगपरिमाणम्]- भोगोपभोगपरिमाण गुणव्रत है

भोग-उपभोग के लक्षण

भुक्त्वा परिहातव्यो भोगो भुक्त्वा पुनश्च भोक्तव्यः

उपभोगोऽशनवसनप्रभृतिः पञ्चेन्द्रियो विषयः ॥83॥

अन्वयार्थ : [अशन] भोजन [वसन] वस्त्र [प्रभृतिः] आदिक [पञ्चेन्द्रिय: विषय:] पाँचों इन्द्रिय सम्बन्धी जो विषय [भुक्त्वा] भोगकर के [परिहातव्य:] छोड़ दी जाती है वह [भोग:] भोग है [च] और [भुक्त्वा] भोगकर [पुन:] वापस [भोक्तव्य:] भोगने में आती है वह [उपभोग:] उपभोग है ।

सर्वथा त्याज्य पदार्थ

त्रसहतिपरिहरणार्थं क्षौद्रं पिशितं प्रमादपरिहृतये

मद्यं च वर्जनीयं जिनचरणौ शरणमुपयातैः ॥84॥

अन्वयार्थ : [जिनचरणौ] जिनेन्द्र भगवान् के चरणों की [शरणम्] शरण को [उपयातै:] प्राप्त हुए पुरुषों के द्वारा [त्रसहतिपरिहरणार्थं] त्रस जीवों की हिंसा परिहार करने के लिए [क्षौद्रं] मधु और [पिशितं] मांस [च] तथा [प्रमादपरिहृतये] प्रमाद का परिहार करने के लिए [मद्यं] मदिरा [वर्जनीयं] छोडऩे योग्य है ।

अन्य त्याज्य पदार्थ

अल्पफलबहुविघातान् मूलकमार्द्राणि शृङ्गवेराणि

नवनीतनिम्बकुसुमं कैतकमित्येवमवहेयम् ॥85॥

अन्वयार्थ : [अल्पफल] फल थोड़ा और [बहुविघातात्] बहुत त्रस जीवों का विघात होने से [आर्द्राणि] सचित्त [मुलकम्] जमीकंद, [शृङ्गवेराणि] जहरीले / काँटों वाले बेर, [नवनीत] मक्खन, [निम्बकुसुमं] नीम के फूल और [कैतकम्] केतकी-केवड़ा के फूल [इति]

इत्यादि [एवं] इसी प्रकार के अन्य पदार्थ [अवहेयम्] छोडऩे योग्य हैं ।

व्रत का स्वरूप

यदनिष्टं तद्व्रतयेद्यच्चानुपसेव्यमेतदपि जह्यात्
अभिसन्धिकृता विरतिर्विषयाद्योग्याद्व्रतं भवति ॥86॥

अन्वयार्थ : [यत्] जो वस्तु [अनिष्टम्] अनिष्ट / अहितकर हो [तद्] उसे [व्रतयेत्] छोड़ें [च] और [यत्] जो [अनुपसेव्यम्] सेवन करने योग्य न हो, [एतदपि] वह भी [जह्यात्] त्याग करें [यत:] क्योंकि [योग्यात्] योग्य [विषयात्] विषय से [अभिसन्धिकृता] अभिप्राय-पूर्वक की हुई [विरति:] निवृत्ति [व्रतम्] व्रत [भवति] होती है ।

यम और नियम

नियमो यमश्च विहितौ, द्वेधा भोगोपभोगसंहारात्
नियमः परिमितकालो, यावज्जीवं यमो ध्रियते ॥87॥

अन्वयार्थ : [भोगोपभोगसंहारात्] भोग और उपभोग के परिमाण का आश्रय कर [नियम:] नियम [च] और [यम:] यम [द्वेषा] दो प्रकार से [विहितौ] व्यवस्थापित हैं / प्रतिपादित हैं, उनमें [परिमितकाल:] जो काल के परिमाण से सहित है वह [नियम:] नियम है और जो [यावज्जीवं] जीवन-पर्यन्त के लिए [ध्रियते] धारण किया जाता है, वह [यम:] यम कहलाता है ।

भोगोपभोग सामग्री

भोजनवाहनशयनस्नानपवित्राङ्गरागकुसुमेषु
ताम्बूलवसनभूषणमन्मथसङ्गीतगीतेषु ॥88॥
अद्य दिवा रजनी वा पक्षो मासस्तथर्तुरयनं वा
इति कालपरिच्छित्त्या प्रत्याख्यानं भवेन्नियमः ॥89॥

अन्वयार्थ : भोजन, [वाहन] सवारी, [शयन] शय्या, स्नान, [पवित्राङ्गरागकुसुमेषु] पवित्र अंग में सुगन्ध पुष्पादिक धारण करना, [ताम्बूल] पान, [वसन] वस्त्र, [भूषण] आभूषण, [मन्मथ] काम-सेवन, [सङ्गीतगीतेषु] संगीत और गीत के विषय में, [अद्य] आज, [दिवा] एक दिन, [रजनी] एक रात, [वा] अथवा [पक्षो] एक पक्ष, [मास:] एक माह, [ऋतू:] एक ऋतु / दो माह [वा] अथवा [अयनम्] एक अयन / छह माह [इति] इस प्रकार [कालपरिच्छित्त्या] समय के विभागपूर्वक [प्रत्याख्यानं] त्याग करना [नियम:] नियम [भवेत्] होता है ।

भोगोपभोग परिमाण व्रत के अतिचार

विषयविषतोऽनुपेक्षानुस्मृतिरतिलौल्यमतितृषाऽनुभवौ
भोगोपभोगपरिमा व्यतिक्रमाः पञ्च कथ्यन्ते ॥90॥

अन्वयार्थ : [विषयविषत:] विषयरूपी विष से [अनुपेक्षा] उपेक्षा नहीं होना अर्थात् उसमें आदर रखना, [अनुस्मृति:] भोगे हुए विषयों का बार-बार स्मरण करना, [अतिलौल्यम्] वर्तमान विषयों में अधिक लम्पटता रखना, [अतितृषाऽनुभवौ] आगामी विषयों की अधिक तृष्णा रखना और वर्तमान विषय का अत्यन्त आसक्ति से अनुभव करना [पञ्च] ये पाँच [भोगोपभोगपरिमाव्यतिक्रमाः] भोगोपभोग-परिमाण-व्रत के अतिचार कहे गए हैं ।

शिक्षाव्रत

देशावकाशिकं वा सामयिकं प्रोषधोपवासो वा
वैयावृत्यं शिक्षाव्रतानि चत्वारि शिष्टानि ॥91॥

अन्वयार्थ : [देशावकाशिकं] देशव्रत और [सामायिकं] सामायिक, [प्रोषधोपवास:] प्रोषधोपवास [वा] और [वैयावृत्यं] वैयावृत्य ये [चत्वारि] चार [शिक्षाव्रतानि] शिक्षाव्रत [शिष्टानि] कहे गये हैं ।

देशावकाशिक शिक्षाव्रत

देशावकाशिकं स्यात्कालपरिच्छेदनेन देशस्य

प्रत्यहमणुव्रतानां प्रतिसंहारो विशालस्य ॥92॥

अन्वयार्थ : [विशालस्य] (दिग्व्रत में जो दशों दिशाओं की) लम्बी चौड़ी [देशस्य] क्षेत्र की मर्यादा का भी [कालपरिच्छेदनेन] काल के विभाग से [प्रत्यहम्] प्रातिदिन [प्रतिसंहार:] त्याग करना [अणुव्रतानां] अणुव्रत पालक श्रावकों का देशावकाशिक व्रत [स्यात्] कहलाता है ।

देशव्रत में मर्यादा की विधि

गृहहारिग्रामाणां क्षेत्रनदीदावयोजनानां च

देशावकाशिकस्य स्मरन्ति सीम्नां तपोवृद्धाः ॥93॥

अन्वयार्थ : [तपोवृद्धाः] गणधरदेवादिक [देशावकाशिकस्य] देशावकाशिक शिक्षाव्रत के शेत्र की [गृह] घर, [हारि] गली, [ग्राम] गाँव [च] और [क्षेत्र] खेत, नदी, [दाव] वन तथा योजनों की [सीम्नां] सीमा [स्मरन्ति] स्मरण करते हैं ।

देशव्रत में काल मर्यादा

संवत्सरमृतुरयनं मासचतुर्मासपक्षमृक्षं च

देशावकाशिकस्य प्राहुः कालावधिं प्राज्ञाः ॥94॥

अन्वयार्थ : [प्राज्ञाः] गणधरदेव / आचार्य [देशावकाशिकस्य] देशावकाशिक-व्रत की [कालावधिं] काल-मर्यादा [संवत्सरम्] एक वर्ष, [अयनम्] छह मास, [ऋतु] दो मास, [मास] एक माह, [चातुर्मास] चार माह, [पक्ष] पंद्रह दिन [च] और [ऋक्षम] एक नक्षत्र को [प्राहु:] कहते हैं ।

यह व्रत भी उपचार से महाव्रत है

सीमान्तानां परतः स्थूलेतर पञ्चपापसंत्यागात्

देशावकाशिकेन च महाव्रतानि प्रसाध्यन्ते ॥95॥

अन्वयार्थ : [सीमान्तानां] सीमाओं के अन्तभाग के [परतः] आगे [स्थूल] स्थूल और [इतर] सूक्ष्म [पञ्चपाप] पाँचों पापों का [संत्यागात्] सम्यक् प्रकार त्याग हो जाने से [देशावकाशिकेन] देशावकाशिक-व्रत के द्वारा [महाव्रतानि] महाव्रत [प्रसाध्यन्ते] सिद्ध किये जाते हैं ।

देशावकाशिक व्रत के अतिचार

प्रेषणशब्दानयनं रूपाभिव्यक्तिपुद्गलक्षेपौ

देशावकाशिकस्य व्यपदिश्यन्तेऽत्ययाः पञ्च ॥96॥

अन्वयार्थ : देशावकाशिक व्रत में की हुई मर्यादा के बाहर [प्रेषण] किसी मनुष्य को भेज देना, [शब्द] मर्यादा के बाहर काम करने वाले के प्रति ताली, चुटकी, हुंकार आदि शब्द से संकेत करना, [आनयनम्] मर्यादा के बाहर से कोई वस्तु मंगाना, [रुपाभिव्यक्ति] मर्यादा के बाहर वाले को अपना शरीर आदि दिखाना और [पुद्गलक्षेपौ] मर्यादा के बाहर काम करने वाले का इशारा करने हेतु कंकड़ आदि फेंकना इस प्रकार से प्रेषण, शब्द, आनयन, रूपाभिव्यक्ति और पुद्गलक्षेप ये पाँच [अत्यया:] अतिचार [देशावकाशिकस्य] देशावकाशिक व्रत के [व्यपदिश्यन्ते] कहे जाते हैं ॥

सामायिक शिक्षाव्रत

आसमयमुक्तिमुक्तं पञ्चाघानामशेषभावेन

सर्वत्र च सामयिकाः सामयिकं नाम शंसन्ति ॥97॥

अन्वयार्थ : [सामयिकाः] सामायिक के ज्ञाता गणधरदेवादिक [अशेषभावेन] मन-वचन-काय और कृत-कारित-अनुमोदना से [सर्वत्र] सब

जगह [आसमयमुक्ति] सामायिक के लिए निश्चित समय तक [पञ्चाघानाम] पाँच पापों के [मुक्तं] त्याग करने को [सामयिकं] सामायिक नाम का शिक्षाव्रत [शंसन्ति] कहते हैं ।

समय शब्द की व्युत्पत्ति

मूर्धरूहमुष्टिवासोबन्धं पर्य्यंकबन्धनं चापि
स्थानमुपवेशनं वा समयं जानन्ति समयज्ञाः ॥98॥

अन्वयार्थ : [समयज्ञाः] आगम के ज्ञाता पुरुष [मूर्धरूहबन्धं] सर के केश के बंध, [मुष्टिबन्धं] मुष्टि के बंध (fist) और [वासोबन्धं] वस्त्र के बन्ध के काल को [च] और [पर्य्यंकबन्धनं] पालथी बांधने के काल को [वा] अथवा [उपवेशनं] खड़े होने के काल को और [स्थानं] बैठने के काल को [समयं] सामायिक का समय [जानन्ति] जानते हैं ।

सामायिक योग्य स्थान

एकान्ते सामयिकं निर्व्याक्षेपे वनेषु वास्तुषु च
चैत्यालयेषु वापि च परिचेतव्यं प्रसन्नधिया ॥99॥

अन्वयार्थ : [निर्व्याक्षेपे] उपद्रव-रहित [एकान्ते] एकांत स्थान में, [वनेषु] वन में, [वास्तुषु] घर / धर्मशाला में, [च] और [चैत्यालयेषु] चैत्यालयों में [अपि] और [वापि च] पर्वत पर गुफा में, श्मशान में जहाँ कहीं भी [प्रसन्नधिया] चित्त को प्रसन्न करके [सामयिकं] सामायिक [परिचेतव्यं] बढ़ाना चाहिये ।

व्रत के दिन सामायिक का उपदेश

व्यापारवैमनस्याद्विनिवृत्त्यामन्तरात्मविनिवृत्त्या
सामायिकं बध्नीयादुपवासे चैकभुक्ते वा ॥100॥

अन्वयार्थ : [उपवासे] उपवास के दिन [वा] अथवा [एक भुक्ते] एकाशन के दिन [व्यापारवैमनस्यात्] शरीरादिक की चेष्टा और मन की व्यग्रता अथवा कलुषता से [विनिवृत्त्याम्] निवृत्ति होने पर [अन्तरात्मविनिवृत्त्या] मानसिक विकल्पों की विशिष्ट निवृत्तिपूर्वक [सामयिकम्] सामायिक को [बध्नीयात्] बढ़ाना चाहिए।

प्रातिदिन सामायिक का उपदेश

सामयिकं प्रतिदिवसं यथावदप्यनलसेन चेतव्यम्
व्रतपञ्चकपरिपूरणकारणमवधानयुक्तेन ॥101॥

अन्वयार्थ : [व्रतपञ्चक] हिंसा त्याग आदि पाँच व्रतों की [परिपूरण] पूर्ति का [कारणम्] कारण [सामायिकं] सामायिक [अनलसेन] आलस्य से रहित और [अवधानयुक्तेन] चित्त की एकाग्रता से युक्त पुरुष के द्वारा [प्रतिदिवसं] प्रतिदिन [यथावत्] शास्त्रोक्त विधि के अनुसार [चेतव्यम्] बढ़ाया जाना चाहिए ।

सामायिक के समय मुनितुल्यता

सामयिके सारम्भाः परिग्रहा नैव सन्ति सर्वेऽपि
चेलोपसृष्टमुनिरिव गृही तदा याति यतिभावम् ॥102॥

अन्वयार्थ : [सामयिके] सामायिक के काल में [सारम्भाः] आरम्भ सहित [सर्वेऽपि] सभी (अन्तरंग-बहिरंग) [परिग्रहा] परिग्रह [नैव] नहीं [सन्ति] होते हैं, इसलिए [तदा] उस समय [गृही] गृहस्थ [चेलोपसृष्ट] उपसर्ग के कारण वस्त्र से वेष्टित [मुनिरिव] मुनि के समान [यतिभावम्] मुनिपने को [आयाति] प्राप्त होता है ।

परीषह / उपसर्ग सहन का उपदेश

शीतोष्णदंशमशकपरीषहमुपसर्गमपि च मौनधराः
सामयिकं प्रतिपन्ना अधिकुर्वीरन्नचलयोगाः ॥103॥
अन्वयार्थ : [सामायिकं] सामायिक को [प्रतिपन्ना] धारण करने वाले [मौनधरा:] मौनधारी [च] और [अचलयोगाः] योगों की चंचलता रहित गृहस्थ [शीतोष्णदंशमशकपरीषहम्] शीत, उष्ण तथा दंशमशक परीषह को [च] और [उपसर्गम्] उपसर्ग को [अपि] भी [अधिकुर्वीरन्] सहन करें ।

सामायिक के समय चिंतन

अशरणमशुभमनित्यं दुःखमनात्मानमावसामि भवम्
मोक्षस्तद्विपरीतात्मेति ध्यायन्तु सामयिके ॥104॥
अन्वयार्थ : [सामयिके] सामायिक में [अशरणम्] अशरण-रूप, [अशुभम्] अशुभ-रूप, [अनित्यम्] अनित्य-रूप, [दु:खम्] दु:ख-रूप और [अनात्मानम्] अनात्म-स्वरूप [भवम्] संसार में [आवसामि] निवास करता हूँ और [मोक्ष:] मोक्ष [तद्विपरीतात्मा] उससे विपरीत स्वरूप वाला है [इति] इस प्रकार [ध्यायन्तु] विचारें ।

सामायिक के अतिचार

वाक्कायमानसानां दुःप्रणिधानान्यनादरास्मरणे
सामयिकस्यातिगमा व्यज्यन्ते पञ्च भावेन ॥105॥
अन्वयार्थ : [वाक्कायमानसानाम] वचन काय और मन की [दुःप्रणिधानानि] खोटी प्रवृत्ति [अनादरास्मरणे] अनादर और अस्मरण ये [पञ्च] पाँच [भावेन] परमार्थ से [सामयिकस्य] सामायिक के [अतिगमा:] अतिचार [व्यज्यन्ते] प्रकट किये जाते हैं ।

प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत

पर्वण्यष्टम्यां च ज्ञातव्यः प्रोषधोपवासस्तु
चतुरभ्यवहार्य्याणां प्रत्याख्यानं सदेच्छाभिः ॥106॥
अन्वयार्थ : [पर्वणि] चतुर्दशी [च] और [अष्टम्यां] अष्टमी के दिन [सदा] हमेशा के लिए [इच्छाभिः] व्रतविधान की वाञ्छा से [चतुरभ्यवहार्य्याणां] चार प्रकार के आहारों का [प्रत्याख्यानं] त्याग करना [प्रोषधोपवास:] प्रोषधोपवास [ज्ञातव्यः] जानना चाहिए ।

उपवास के दिन वर्जित कार्य

पञ्चानां पापानामलङ्क्रियारम्भगन्धपुष्पाणाम्
स्नानाञ्जननस्यानामुपवासे परिहृतिं कुर्य्यात् ॥107॥
अन्वयार्थ : [उपवासे] उपवास के दिन [पञ्चानां] पाँच [पापानाम्] पापों का तथा [अलङ्क्रिया] अलंकार धारण करना, [आरम्भ] खेती आदि का आरम्भ करना, [गन्धपुष्पाणाम्] चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों का लेप करना, पुष्पमालाएँ धारण करना या पुष्पों को सूंघना, [स्नान] स्नान करना, [अञ्जन] काजल / सुरमा आदि लगाना तथा [नस्या] नाक से नस्य आदि का सूंघना इन सबका [परिहृतिं] परित्याग [कुर्य्यात्] करना चाहिए ।

उपवास के दिन कर्तव्य

धर्मामृतं सतृष्णः श्रवणाभ्यां पिबतु पाययेद्वान्यान्
ज्ञानध्यानपरो वा भवतूपवसन्नतन्द्रालूः ॥108॥
अन्वयार्थ : [उपवसन] उपवास करने वाला व्यक्ति [अतन्द्रालूः] आलस्य-रहित होता [सतृष्णः] उत्कंठित होता हुआ [श्रवणाभ्यां] कानों से [धर्मामृतं] धर्मरूपी अमृत को [पिबतु] स्वयं पीवे [वा] अथवा [अन्यान्] दूसरों को [पाययेत्] पिलावे अथवा आलस्य रहित होता हुआ [ज्ञानध्यानपरो] ज्ञान और ध्यान में तत्पर [भवतु] होवे ।

प्रोषध और उपवास का लक्षण

चतुराहारविसर्जनमुपवासः प्रोषधः सकृद्भुक्तिः
स प्रोषधोपवासो यदुपोष्यारम्भमाचरति ॥109॥

अन्वयार्थ : [चतुराहार] चार प्रकार के आहार का [विसर्जनम्] त्याग करना [उपवासः] उपवास है । [सकृद्] एक बार [भुक्ति] भोजन करना [प्रोषधः] प्रोषध / एकासन है और [यत्] इसप्रकार [उपोष्य] उपवास करने के बाद [आरम्भं] एकाशन को [आचरति] करना [स:] वह [प्रोषधोपवास:] प्रोषधोपवास है ।

प्रोषधोपवासव्रत के अतिचार

ग्रहणविसर्गास्तरणान्यदृष्टमृष्टान्यनादरास्मरणे
यत्प्रोषधोपवासव्यतिलंघनपंचकं तदिदम् ॥110॥

अन्वयार्थ : [यत्] जो [अदृष्टमृष्टानि] बिना देखे तथा बिना शोधे [ग्रहणविसर्गास्तरणानि] पूजा आदि के उपकरणों को ग्रहण करना, मलमूत्रादि को छोडऩा और संस्तर आदि को बिछाना तथा [अनादरास्मरणे] आवश्यक आदि में अनादर और योग्य क्रियाओं को भूल जाना, [तदिदं] वे ये [प्रोषधोपवासव्यतिलंघनपंचकं] प्रोषधोपवास व्रत के पाँच अतिचार हैं ।

वैयावृत्य का लक्षण

दानं वैयावृत्त्यं धर्माय तपोधनाय गुणनिधये
अनपेक्षितोपचारोपक्रियमगृहाय विभवेन ॥111॥

अन्वयार्थ : [तपोधनाय] तपरूप धन से युक्त तथा [गुणनिधये] सम्यग्दर्शनादि गुणों के भण्डार [अगृहाय] गृहत्यागी-मुनीश्वर के लिए [विभवेन] विधि, द्रव्य आदि सम्पत्ति के अनुसार [अनपेक्षितोपचारोपक्रियम्] प्रतिदान और प्रत्युपकार की अपेक्षा से रहित [धर्माय] स्व-पर के धर्म की वृद्धि के लिए जो [दानम्] दान दिया जाता है, वह [वैयावृत्त्यं] वैयावृत्य कहलाता है ।

वैयावृत्य का दूसरा लक्षण

व्यापत्तिव्यपनोदः पदयोः संवाहनं च गुणरागात्
वैयावृत्त्यं यावानुपग्रहोऽन्योऽपि संयमिनाम् ॥112॥

अन्वयार्थ : [गुणरागात्] सम्यग्दर्शनादि गुणों की प्रीति से [संयमिनाम्] देशव्रत और सकलव्रत के धारक संयमीजनों को [व्यापत्तिव्यपनोदः] आई हुई नाना प्रकार की आपत्ति को दूर करना [पदयोः] पैरों का, उपलक्षण से हस्तादिक अङ्गों का [संवाहनं] दाबना [च] और [अन्योऽपि] अन्य भी [यावान्] जितना [उपग्रह:] उपकार है, वह वैयावृत्य कहा जाता है ।

दान का लक्षण

नवपुण्यैः प्रतिपत्तिः सप्तगुणसमाहितेन शुद्धेन
अपसूनारम्भाणामार्याणामिष्यते दानम् ॥113॥

अन्वयार्थ : [सप्तगुणसमाहितेन] सात गुणों से सहित और [शुद्धेन] कौलिक, आचारिक तथा शारीरिक शुद्धि से सहित दाता के द्वारा [अपसूनारम्भाणाम्] गृहसम्बन्धी कार्य तथा खेती आदि के आरम्भ से रहित [आर्याणां] सम्यग्दर्शनादि गुणों से सहित मुनियों का [नवपुण्यैः] नवधाभक्ति पूर्वक [प्रतिपत्तिः] आहारादि के द्वारा गौरव किया जाता है, वह दान [इष्यते] माना जाता है ।

दान का फल

गृहकर्मणापि निचितं कर्मविमार्ष्टि खलु गृहविमुक्तानाम्
अतिथीनां प्रतिपूजा रुधिरमलं धावते वारि ॥114॥

अन्वयार्थ : जिस प्रकार [वारि] जल [रुधिरमलं] खून को [धावते] धो देता है, [निचितं] निश्चय से उसी प्रकार [गृहविमुक्तानाम्] गृहरहित

निग्रन्थ मुनियों के लिए दिया हुआ [प्रतिपूजा] दान [खलु] वास्तव में [गृहकर्मणापि] गृहस्थी सम्बन्धी [कर्म] कार्यों से उपार्जित अथवा सुदृढ़ भी [कर्मविमार्ष्टि] कर्म को नष्ट कर देता है ।

नवधा भक्ति का फल

उच्चैर्गोत्रं प्रणतेर्भोगो, दानादुपासनात्पूजा
भक्तेः सुन्दररूपं स्तवनात्कीर्तिस्तपोनिधिषु ॥115॥

अन्वयार्थ : [तपोनिधिषु] तप के खजाने स्वरूप मुनियों को [प्रणते:] नमस्कार करने से [उच्चैर्गोत्रं] उच्चगोत्र, [दानात्] आहारादि दान देने से [भोग:] भोग, [उपासनात्] उपासना आदि करने से [पूजा] सम्मान, [भक्ते:] भक्ति करने से [सुन्दररूपं] सुन्दररूप और [स्तवनात्] स्तुति करने से [कीर्ति:] सुयश [प्राप्यते] प्राप्त किया जाता है।

अल्पदान से महाफल

क्षितिगतमिव वटबीजं पात्रगतं दानमल्पमपि काले
फलतिच्छायाविभवं बहुफलमिष्टं शरीरभृताम् ॥116॥

अन्वयार्थ : [काले] उचित समय में [पात्रगतं] योग्य पात्र के लिए दिया हुआ [अल्पमपि] थोड़ा भी [दानं] दान [क्षितिगतं] उत्तम पृथ्वी में पड़े हुए [वटबीजमिव] वटवृक्ष के बीज के समान [शरीरभृताम्] प्राणियों के लिए [छायाविभवं] माहात्म्य और वैभव से युक्त, पक्ष में छाया की प्रचुरता से सहित [बहु] बहुत भारी [इष्टं] अभिलषित [फलं] फल को [फलती] फलता है ।

दान के भेद

आहारौषधयोरप्युपकरणावासयोश्च दानेन
वैयावृत्त्यं ब्रुवते चतुरात्मत्वेन चतुरस्राः ॥117॥

अन्वयार्थ : [चतुरस्राः] चार ज्ञान-धारी (गणधर-देव) [आहारौषधयो:] आहार, औषध [च] और [उपकरणावासयो:अपि] उपकरण तथा आवास के भी [दानेन] दान से [वैयावृत्त्यं] वैयावृत्य को [चतुरात्मत्वेन] चार प्रकार का [ब्रुवते] कहते हैं ।

दानों में प्रसिद्ध नाम

श्रीषेणवृषभसेने कौण्डेशः सूकरश्च दृष्टान्ताः
वैयावृत्यस्यैते चतुर्विकल्पस्य मन्तव्याः ॥118॥

अन्वयार्थ : श्रीषेण राजा आहार दान के फल से श्री शांतिनाथ तीर्थंकर हुये हैं। वृषभसेना ने औषधिदान के प्रभाव से अपने शरीर के स्पर्शित जल से बहुतों के दु:ख दूर किये हैं। कोंडेश ने मुनि को शास्त्रदान देकर अपने श्रुतज्ञान को पूर्ण कर प्रसिद्धि पाई है और सूकर ने मुनि को अभयदान देने के पुण्य से देवगति को प्राप्त किया है ।

वैयावृत्य में अर्हंत पूजा

देवाधिदेवचरणे परिचरणं सर्वदुःखनिर्हरणम्
कामदुहि कामदाहिनि परिचिनुयादादृतो नित्यम् ॥119॥

अन्वयार्थ : [आदृत:] श्रावक को आदर से युक्त होकर [नित्यम्] प्रतिदिन [देवाधिदेवचरणे] अरहन्त भगवान् के चरणों में [कामदुहि] मनोरथों को पूर्ण करने वाली और [कामदाहिनि] काम को भस्म करने वाली [सर्वदुःखनिर्हरणम्] समस्त दु:खों को दूर करने वाली [परिचरणं] पूजा [परिचिनुयात्] अवश्य करनी चाहिए ।

पूजा का माहात्म्य

अर्हच्चरणसपर्यामहानुभावं महात्मनामवदत्

भेकः प्रमोदमत्तः कुसुमेनैकेन राजगृहे ॥120॥

अन्वयार्थ : [राजगृहे] राजगृही में [भेकः] मेढ़क [प्रमोदमत्तः] प्रमोद से र्हिषत हुआ [कुसुमेनैकेन] एक पुष्प के द्वारा [महात्मनाम्] भव्य जीवों के आगे [अर्हच्चरणसपर्यामहानुभावं] अर्हंत पूजा के महात्म्य को [अवदत्] प्रकट किया था ।

वैयावृत्य के अतिचार

हरितपिधाननिधाने, ह्यनादरास्मरणमत्सरत्वानि

वैयावृत्यस्यैते, व्यतिक्रमा: पञ्च कथ्यन्ते ॥121॥

अन्वयार्थ : निश्चय से [हरितपिधाननिधाने] देने योग्य वस्तु को हरितपत्र आदि से ढकना तथा हरितपत्र आदि पर देने योग्य वस्तु को रखना, अनादर, अस्मरण और [मत्सरत्वानि] इर्ष्या ये पाँच वैयावृत्य के [व्यतिक्रमा:] अतिचार [कथ्यन्ते] कहे जाते हैं ।

सल्लेखना का लक्षण

उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निःप्रतिकारे

धर्माय तनुविमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः ॥122॥

अन्वयार्थ : [आर्या:] गणधरादिक देव [नि:प्रतीकारे] प्रतिकार रहित [उपसर्गे] उपसर्ग, [दुर्भिक्षे] दुष्काल, [जरसि] बुढ़ापा [च] और [रुजायां] रोग के उपस्तिथ होने पर [धर्माय] धर्म के लिए [तनुविमोचनं] शरीर के छोड़ने को [सल्लेखना] सल्लेखना [आहु:] कहते हैं ।

सल्लेखना की आवश्यकता

अन्त:क्रियाधिकरणं, तप: फलं सकलदर्शिन: स्तुवते

तस्माद्यावद्विभवं समाधिमरणे प्रयतितव्यम् ॥123॥

अन्वयार्थ : [सकलदर्शिनः] सर्वज्ञदेव [अन्त: क्रियाधिकरणं] अन्त समय समाधिमरणस्वरुप सल्लेखना को [तपः फलं] तप का फल [स्तुवते] कहते हैं [तस्मात्] इसलिए [यावद्विभवं] यथाशक्ति [समाधिमरणे] समाधिमरण के विषय में [प्रयतितव्यम्] प्रयत्न करना चाहिए ।

सल्लेखना की विधि और महाव्रत धारण का उपदेश

स्नेहं वैरं सङ्गं, परिग्रहं चापहाय-शुद्धमना:

स्वजनं परिजनमपि च, क्षान्त्वा क्षमयेत्प्रियैर्वचनै: ॥124॥

आलोच्य सर्वमेन:, कृतकारितमनुमतं च निर्व्याजम्

आरोपयेन्महाव्रत-मामरणस्थायि नि:शेषम् ॥125॥

अन्वयार्थ : सल्लेखनाधारी [स्नेहं] राग को [वैरं] बैर को [सङ्गं] ममत्वभाव को [च] और [परिग्रहं] परिग्रह को [अपहाय] छोड़कर [शुद्धमनाः सन्] स्वच्छ हृदय होता हुआ [प्रियै:वचनैः] मधुर वचनों से [स्वजनं] अपने कुटुम्बी जन तथा [परिजनमपि] परिकर के लोगों को [क्षान्त्वा] क्षमा कराकर [क्षमयेत्] स्वयं क्षमा करे । सल्लेखनाधारी [कृतकारितम्] कृत, कारित [च] और [अनुमतं] अनुमोदित [सर्वम्] समस्त [एनः] पापों को [निर्व्याजम्] छल कपट रहित या आलोचना के दोषों से रहित [आलोच्य] आलोचना करके [आमरणस्थायि] जीवनपर्यन्त रहने वाले [नि:शेषम्] समस्त/पाँचो [महाव्रतम्] महाव्रतों को [आरोपयेत्] धारण करे ।

स्वाध्याय का उपदेश

शोकं भयमवसादं, क्लेदं कालुष्यमरतिमपि हित्वा

सत्त्वोत्साहमुदीर्य च, मन: प्रसाद्यं श्रुतैरमृतै: ॥126॥

अन्वयार्थ : [शोकं] शोक, [भयं] डर, [अवसादं] विषाद, [क्लेदं] स्नेह, [कालुष्यम्] रागद्वेष और [अरतिम्] अप्रीती को [अपि] भी [हित्वा] छोड़कर [च] और [सत्त्वोत्साहम्] बल और उत्साह को [उदीर्य] प्रकट करके [अमृतैः] अमृत के समान [श्रुतै:] शास्त्रों से [मनः]

मन को [प्रसाद्यम] प्रसन्न करना चाहिये ।

भोजन के त्याग का क्रम

आहारं परिहाप्य, क्रमश: स्निग्धं-विवर्द्धयेत्पानम्

स्निग्धं च हापयित्वा, खरपानं पूरयेत्क्रमश: ॥127॥

अन्वयार्थ : सल्लेखनाधारी को [क्रमशः] क्रम से [आहारं] अन्न के भोजन को [परिहाप्य] छोड़कर [स्निग्धं पानम्] दूध आदि स्निग्ध पेय को [विवर्द्धयेत्] बढ़ाना चाहिए [च] पश्चात् [स्निग्धं] दूध आदि स्निग्ध पेय को [हापयित्वा] छोड़कर [खरपानं] गर्म जल को [पूरयेत्] बढ़ाना चाहिए ।

सल्लेखना में शेष आहार त्याग का क्रम

खरपानहापनामपि, कृत्वा कृत्वोपवासमपि शक्त्या

पञ्चनमस्कारमनास्तनुं त्यजेत्सर्व-यत्नेन ॥128॥

अन्वयार्थ : [खरपानहापनामपि] गर्म जल का भी त्याग [कृत्वा] करके [शक्त्या] शक्ति के अनुसार [उपवासमपि] उपवास भी [कृत्वा] करके [सर्वयत्नेन] पूर्ण तत्परता से [पञ्चनमस्कारमना:] पञ्चनमस्कार मंत्र में मन लगाता हुआ [तनुं] शरीर को [त्यजेत्] छोड़े ।

सल्लेखना के पांच अतिचार

जीवितमरणाशंसे, भयमित्र-स्मृतिनिदाननामान:

सल्लेखनातिचारा:, पञ्च जिनेन्द्रै: समादिष्टा: ॥129॥

अन्वयार्थ : [जीवितमरणाशंसे] जीवितशंसा, मरणाशंसा [भयमित्रस्मृतिनिदाननामानः] भय, मित्रस्मृति और निदान नाम से युक्त [पञ्च] पाँच [सल्लेखनातिचाराः] सल्लेखना के अतिचार [जिनेन्द्रैः] जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा [समादिष्टाः] कहे गये हैं ।

सल्लेखना का फल

नि:श्रेयसमभ्युदयं, निस्तीरं दुस्तरं सुखाम्बुनिधिम्

नि: पिबति पीतधर्मा, सर्वैर्दु:खैरनालीढ: ॥130॥

अन्वयार्थ : [पीतधर्मा] धर्मरूपी अमृत का पान करने वाला कोई क्षपक [सर्वै:] समस्त [दुःखै:] दु:खों से [अनालीढः] रहित होता हुआ [निस्तीरं] अन्त रहित तथा [सुखाम्बुनिधिम्] सुख के समुद्र स्वरुप [निःश्रेयसम्] मोक्ष का [निःपिबति] अनुभव करता है और कोई क्षपक [दुस्तरं] बहुत समय में समाप्त होने वाले [अभ्युदयं] अहमिन्द्र आदि की सुख परम्परा का अनुभव करता है ।

मोक्ष का लक्षण

जन्मजरामयमरणै: शोकैर्दु:खैर्भयैश्च परिमुक्तम्

निर्वाणं शुद्धसुखं, नि:श्रेयसमिष्यते नित्यम् ॥131॥

अन्वयार्थ : [जन्मजरामयमरणैः] जन्म, बुढापा, रोग, मरण, [शोकै:] शोक, [दुःखै:] दुःख [च] और [भयै:] भयों से [परिमुक्तम्] रहित [शुद्धसुखं] शुद्ध सुख से सहित [नित्यम्] नित्य-अविनाशी [निर्वाणं] निर्वाण [निःश्रेयसम्] निःश्रेयस [इष्यते] माना जाता है ।

मुक्तजीवों का लक्षण

विद्यादर्शन-शक्ति-स्वास्थ्यप्रह्लादतृप्तिशुद्धियुज:

निरतिशया निरवधयो, नि:श्रेयसमावसन्ति सुखम् ॥132॥

अन्वयार्थ : [विद्यादर्शनशक्ति] केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तवीर्य [स्वास्थ्यप्रह्लाद] परम उदासीनता, अनंतसुख [तृप्तिशुद्धियुजः] तृप्ति और शुद्धि को प्राप्त [निरतिशया:] हिनाधिकता रहित और [निरवधय:] अवधि से रहित जीव [सुखम्] सुखस्वरूप [निःश्रेयसम्] मोक्षरुप

निःश्रेयस में [आवसन्ति] निवास करते हैं ।

विकार का अभाव

काले कल्पशतेऽपि च, गते शिवानां न विक्रिया लक्ष्या
उत्पातोऽपि यदि स्यात्, त्रिलोकसम्भ्रान्तिकरणपटु: ॥133॥

अन्वयार्थ : [कल्पशते काले] सैंकड़ो कल्पकालों के काल के [गते] बीतने पर [अपि] भी [यदि] अगर [त्रिलोकसम्भ्रान्ति करणपटुः] तीनों लोकों में खलबली पैदा करने वाला [उत्पात:] उपद्रव [अपि] भी [स्यात्] हो [तथापि] तो भी [पि च शिवानां] सिद्धों में [विक्रिया] विकार [न लक्ष्या] दृष्टिगोचर नहीं होता ।

मुक्तजीव कहाँ रहते हैं ?

नि:श्रेयसमधिपन्ना-स्त्रैलोक्यशिखामणिश्रियं दधते
निष्किट्टिकालिकाच्छवि-चामीकरभासुरात्मान: ॥134॥

अन्वयार्थ : [निष्कट्टिकालिकात्] कीट और कालिमा से रहित [छविचामीकर] कान्तिवाले सुवर्ण के समान [भासुरात्मानः] जिसका स्वरुप प्रकाशवान हो रहा है ऐसे [निःश्रेयसमधिपन्ना:] मोक्ष को प्राप्त हुए सिद्ध परमेष्ठी [त्रैलोक्य] तीन लोक के [शिखामणिश्रियं] अग्रभाग पर चूड़ामणि की शोभा को [दधते] धारण करते हैं ।

सद्धर्म का फल

पूजार्थाज्ञैश्वर्यै:, बलपरिजनकामभोगभूयिष्ठै:
अतिशयितभुवनमद्भुत-मभ्युदयं फलति सद्धर्म: ॥135॥

अन्वयार्थ : [सद्धर्मः] सल्लेखना के द्वारा समुपार्जित समीचीन धर्म [बलपरिजनकामभोग भूयिष्ठैः] बल, परिवार तथा काम और भोगों से परिपूर्ण [पूजार्थाज्ञैश्वर्यै:] प्रतिष्ठा, धन और आज्ञा के ऐश्वर्य तथा [अतिशयितभुवनं] संसार को आश्चर्ययुक्त करने वाले तथा स्वयं [अद्भुतं] आश्चर्यकारी [अभ्युदयं] स्वर्गादिरूप अभ्युदय को [फलति] फलता है ।

ग्यारह प्रतिमा

श्रावकपदानि देवै-रेकादश देशितानि येषु खलु
स्वगुणा: पूर्वगुणै: सह, सन्तिष्ठन्ते क्रमविवृद्धा: ॥136॥

अन्वयार्थ : [देवै:] तीर्थङ्कर भगवान् के द्वारा [एकादश] ग्यारह [श्रावकपदानि] श्रावक की प्रतिमाएँ [देशितानि] कही गई हैं [येशु] जिनमें [खलू] वास्तव में [स्वगुणा:] अपनी-अपनी प्रतिमा सम्बन्धी गुण [पूर्वगुणै:सह] पूर्वपूर्व प्रतिमा सम्बन्धी गुणों के साथ [क्रमविवृद्धा:] क्रम से वृद्धि को प्राप्त होते हुए [सन्तिष्ठन्ते] स्थित होते हैं ।

दर्शन प्रतिमा

सम्यग्दर्शनशुद्ध:, संसारशरीर-भोगनिर्विण्ण:
पञ्चगुरुचरणशरणो, दर्शनिकस्तत्त्वपथगृह्य: ॥137॥

अन्वयार्थ : [सम्यग्दर्शनशुद्ध:] जो सम्यग्दर्शन से शुद्ध है, [संसारशरीर-भोगनिर्विण्ण:] संसार शरीर और भोगों से विरक्त है, [पञ्चगुरुचरणशरणो] पञ्च परमेष्ठियों के चरणों की शरण जिसे प्राप्त हुई है तथा [तत्त्वपथगृह्य:] तत्त्व-पथ की ओर जो आकर्षित है, [दर्शनिक:] वह दार्शनिक श्रावक है ।

व्रत प्रतिमा

निरतिक्रमणमणुव्रत-पञ्चकमपि शीलसप्तकं चापि

धारयते नि:शल्यो, योऽसौ व्रतिनां मतो व्रतिक: ॥138॥

अन्वयार्थ : [य:] जो [नि:शल्यो] शल्यरहित होता हुआ [निरतिक्रमणम] अतिचार रहित [अणुव्रत-पञ्चकम्] पाँचों अणुव्रतों को [च] और [शीलसप्तकं] सातों शीलों को [धारयते] धारण करता है, [असौ] वह [व्रतिनां] गणधर-देवादिक व्रतियों के मध्य में व्रतिक श्रावक [मत:] माना गया है ।

सामायिक प्रतिमा

चतुरावर्तत्रितय-श्चतु:प्रणाम: स्थितो यथाजात:

सामयिको द्विनिषद्य-स्त्रियोगशुद्धस्त्रिसन्ध्यमभिवन्दी ॥139॥

अन्वयार्थ : जो [चतुरावर्तत्रितय:] चार बार तीन-तीन आवर्त करता है, [चतु:प्रणाम:] चार प्रणाम करता है, [स्थित:] कायोत्सर्ग से खड़ा होता है, [यथाजात:] बाह्याभ्यन्तर परिग्रह का त्यागी होता है, [द्विनिषद्य:] दो बार बैठकर नमस्कार करता है, [त्रियोगशुद्ध:] तीनों योगों को शुद्ध रखता है और [त्रिसन्ध्यम] तीनों संध्याओं में [अभिवन्दी] वन्दना करता है, वह [सामयिक:] सामायिक प्रतिमाधारी है ।

प्रोषध प्रतिमा

पर्वदिनेषु चतुर्ष्वपि, मासे मासे स्वशक्तिमनिगुह्य

प्रोषधनियमविधायी, प्रणधिपर: प्रोषधानशन: ॥140॥

अन्वयार्थ : जो [मासेमासे] प्रत्येक मास में [चतुर्षु] चारों [अपि] ही [पर्वदिनेषु] पर्व के दिनों में [स्वशक्तिम्] अपनी शक्ति को [अनिगुह्य] न छिपाकर [प्रोषधनियमविधायी] प्रोषध सम्बन्धी नियम को करता हुआ [प्रणधिपर:] एकाग्रता में तत्पर रहता है, वह [प्रोषधानशन:] प्रोषधोपवास प्रतिमाधारी है ।

सचित्त त्याग प्रतिमा

मूलफलशाकशाखा - करीरकन्दप्रसूनबीजानि

नामानि योऽत्ति सोऽयं, सचित्तविरतो दयामूर्ति: ॥141॥

अन्वयार्थ : [य:] जो [दयामूर्ति:] दया की मूर्ति होता हुआ [आमानि] अपक्व / कच्चे मूल, फल, शाक, [शाक] डाली, [शाखा] कोंपलों, करीर, कन्द, [प्रसून] फूल और बीज को [न अत्ति] नहीं खाता है, वह यह [सचित्तविरतो] सचित्त त्यागी है ।

रात्रि भुक्ति त्याग प्रतिमा

अन्नं पानं खाद्यं लेह्यं नाश्नाति यो विभावर्याम्

स च रात्रिभुक्तिविरत: सत्त्वेष्वनुकम्पमानमना: ॥142॥

अन्वयार्थ : [य:] जो [सत्त्वेषु] जीवों पर [अनुकम्पमानमना:] दयालुचित्त होता हुआ [विभावर्याम्] रात्रि में अन्न, [पानं] पेय, खाद्य और [लेह्यम्] चाटने योग्य पदार्थ को [ण अश्नाति] नहीं खाता है, [स:] वह रात्रिभुक्तित्याग प्रतिमाधारी श्रावक [कथ्यते] कहलाता है ।

ब्रह्मचर्य प्रतिमा

मलबीजं मलयोनिं, गलन्मलं पूतिगन्धि बीभत्सं

पश्यन्नङ्गमनङ्गा-द्विरमति यो ब्रह्मचारी स: ॥143॥

अन्वयार्थ : [मलबीजं] शुक्र-शोणित-रूप मल से उत्पन्न, [मलयोनिं] मलिनता का कारण, [गलन्मलं] मलमूत्रादि को झराने वाले [पूतिगन्धि] दुर्गन्ध से सहित [च] और [बीभत्सं] ग्लानि को उत्पन्न करने वाले शरीर को [पश्यन] देखता हुआ [य:] जो [अनङ्गात्] कामसेवन से [विरमति] विरत होता है, [स:] वह ब्रह्मचारी अर्थात् ब्रह्मचर्य प्रतिमा का धारक [कथ्यते] कहलाता है ।

आरम्भ त्याग प्रतिमा

सेवाकृषिवाणिज्य-प्रमुखादारम्भतो व्युपरमति
प्राणातिपातहेतोर्योऽसावारम्भ-विनिवृत्त: ॥144॥
अन्वयार्थ : [य:] जो [प्राणातिपातहेतो:] जीव-हिंसा के कारण सेवा, [कृषि] खेती तथा [वाणिज्य] व्यापार आदि आरम्भ से [व्युपरमति] निवृत्त होता है, [असौ] वह [आरम्भ-विनिवृत्त:] आरम्भत्याग प्रतिमा का धारक है ।

परिग्रह त्याग प्रतिमा

बाह्येषु दशसु वस्तुषु, ममत्वमुत्सृज्य निर्ममत्वरत:
स्वस्थ: सन्तोषपर:, परिचितपरिग्रहाद्विरत: ॥145॥
अन्वयार्थ : [दशसु] दश [बाह्येषु] बाह्य [वस्तुषु] वस्तुओं में [ममत्वम्] ममताभाव को [उत्सृज्य] छोडक़र [निर्ममत्वरत:] निर्मोही होता हुआ [य:] जो [स्वस्थ:] आत्मस्वरूप में स्थित [च] तथा [संतोशपर:] सन्तोष में तत्पर रहता है, [स:] वह [परिचितपरिग्रहात्] सब ओर से चित्त में स्थित परिग्रह से [विरत:] विरत होता है ।

अनुमति त्याग प्रतिमा

अनुमतिरारम्भे वा, परिग्रहे ऐहिकेषु कर्मसु वा
नास्ति खलु यस्य समधी-रनुमतिविरत: स मन्तव्य: ॥146॥
अन्वयार्थ : निश्चय से [आरारम्भे] आरम्भ के कार्यों में अथवा [परिग्रहे] परिग्रह में [वा] अथवा [ऐहिकेषु] इस लोक सम्बन्धी [कर्मसु] कार्यों में [यस्य] जिसके [अनुमति] अनुमोदना [न] नहीं है, [स:] वह [समधी:] समान बुद्धि का धारक [अनुमतिविरत:] अनुमतित्याग प्रतिमाधारी [मन्ततव्य:] माना जाना चाहिए ।

उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा

गृहतो मुनिवनमित्वा, गुरूपकण्ठे व्रतानि परिगृह्य
भैक्ष्याशनस्तपस्य-न्नुत्कृष्टश्चेलखण्डधर: ॥147॥
अन्वयार्थ : जो [गृहतो] घर से [मुनिवनम्] मुनियों के वन को [इत्वा] जाकर [गुरूपकण्ठे] गुरु के पास [व्रतानिपरिगृह्य] व्रत ग्रहण कर [भैक्ष्याशन:] भिक्षा भोजन करता हुआ [तपस्यन्] तपश्चरण करता है, [चेलखण्डधर:] तथा एक वस्त्रखण्ड को धारण करता है, वह उत्कृष्ट श्रावक [कथ्यते] कहलाता है ।

श्रेष्ठ ज्ञाता कौन है ?

पाप-मरातिर्धर्मो, बन्धुर्जीवस्य चेति निश्चिन्वन्
समयं यदि जानीते, श्रेयोज्ञाता ध्रुवं भवति ॥148॥
अन्वयार्थ : [पापम्] पाप ही [जीवस्य] जीव का [अराति:] शत्रु है [च] और [धर्म:] धर्म ही जीव का [बंधु] हितकारी है, [इति] इस प्रकार [निश्चिन्वन्] निश्चय करता हुआ वह श्रावक [समयम्] आगम / आत्मा को [जानीते] जानता है, [तर्हि] तो वह [ध्रुवं] निश्चय से [श्रेयोज्ञाता] श्रेष्ठज्ञाता अथवा कल्याण का ज्ञाता [भवति] होता है ।

रत्नत्रय का फल

येन स्वयं वीतकलंकविद्या-दृष्टिक्रिया-रत्नकरण्डभावम्
नीतस्तमायाति-पतीच्छयेव, सर्वार्थसिद्धिस्त्रिषु-विष्टपेषु ॥149॥
अन्वयार्थ : [येन] जिसने [स्वयं] अपने आत्मा को [वीतकलंक] निर्दोष [विद्या] ज्ञान, [दृष्टि] दर्शन और [क्रिया] चारित्ररूप [रत्नकरण्डभावम्] रत्नों के करण्डभाव-पिटारापने को [नीत:] प्राप्त कराया है, [तं] उसे [त्रिषुविष्टपेषु] तीनों लोकों में [पतीच्छयेव] पति की इच्छा से ही मानों [सर्वार्थसिद्धि:] धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चारों पुरुषार्थों की सिद्धि [आयाति] प्राप्त होती है ।

इष्ट प्रार्थना

सुखयतु सुखभूमि: कामिनं कामिनीव,
सुतमिव जननी मां शुद्धशीला भुनक्तु
कुलमिव गुणभूषा, कन्यका सम्पुनीतात्-
जिनपतिपदपद्म-प्रेक्षिणी दृष्टिलक्ष्मी: ॥150॥

अन्वयार्थ : [जिनपतिपदपद्मप्रेक्षिणी] जिनेन्द्रदेव के चरण-कमलों का अवलोकन करने वाली ऐसी यह [दृष्टिलक्ष्मी:] सम्यग्दर्शनरूपी लक्ष्मी [सुखभूमि:] सुख की भूमि ऐसी कामिनी के सदृश [मां] मुझे [सुखयतु] सुखी करे जैसे [कामिनी] स्त्री [कामिनमिव] कामी पुरुष को, [भुनक्तु] रक्षित करे, जिस तरह की [शुद्धशीला जननी] शुद्ध शीलवती माता जैसे [सुतमिव] अपने पुत्र का [सम्पुनीतात्] पालन करती है तथा [गुणभूषाकन्यका] गुणों से भूषित कन्या जैसे अपने [कुलम्] कुल को पवित्र करती है वैसे ही वह मुझे पवित्र करे ॥